मुलाकात

कहानी संग्रह

ओमकार कौल

मुलाकात

कहानी संग्रह

ओमकार कौल

प्रकाशक
वितस्ता प्रकाशन
नई दिल्ली

मुलाकात (कहानी संग्रह)

डॉ० ओमकार कौल
निदेशक
भारतीय भाषा संस्थान
मानसगंगोत्री
मैसूर-570 006

प्रथम संस्करण 2001

प्रकाशक :
वितस्ता प्रकाशन
सी.बी.-18, रिंग रोड़ नारायणा,
नई दिल्ली-110 028
दूरभाष : 5694659

दो शब्द

कहानियां मैं अपने विद्यार्थी जीवन काल से ही लिखता रहा हूँ। १९६० से १९६३ के दौरान लिखी कई कहानियां कश्मीर के मेरे स्थाई निवास स्थान बुगाम (कुलगाम) में १९९० ई० में आग की नज़र हो गईं।

अक्तूबर १९६३ ई० में एम. ए. करने के पश्चात मैं अपना घर-गाँव छोड़कर दिल्ली आया। मेरी पहली कहानी 'टयूशन' दिल्ली की एक साहित्यिक पत्रिका में १९६४ में प्रकाशित हुई। आगरा में अपने प्रवास के दौरान (१९६४-१९६७) मैं शोध-कार्य करने के साथ-साथ बीच बीच में कहानियां लिखता रहा, जिनमें कुछ स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई और शेष नष्ट हुई।

अमरीका में प्रवास के दौरान (१९६९-१९७१) और भारत लौटने पर पटियाला (१९७१-१९८७) में अधिकतर भाषा विज्ञान और भाषा शिक्षण के विषय से जुड़ गया। अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य में व्यस्तता के कारण मैंने बहुत ही कम कहानियां लिखीं।

मसूरी में अपने प्रवास के दौरान (१९८७-१९९४) फिर से कहानियां लिखने की और रुचि पैदा हुई। शायद चारों ओर के प्राकृतिक सौंदर्य और पहाड़ी माहौल ने मुझे इस और प्रेरित किया हो।

अपनी कहानियों के बारे में कुछ कहना मुश्किल है। फिर उन कहानियों के बारे में जो कुछ लम्हों, घटनाओं या किरदारों की धरोहर हों। मैं कश्मीरी और हिंदी दोनों भाषाओं में कहानियां लिखता रहा हूँ। प्रस्तुत संकलन में पिछले एक दशक में लिखी कहानियां मैंने पहले कश्मीरी में लिखी हैं और बाद में हिंदी में। बहुत सी कहानियां किसी भी रिवायती परिभाषा में बन्ध नहीं जाती। ये कहानियां विविध घटनाओं, किरदारों एवं अनुभवों से जुड़ी हैं। कई कहानियां छोटी हैं जो 'लघु' कहानियों की परिभाषा में भी पूर्णतः समाती नहीं। मेरे विचार में कहानी न छोटी होती है और न लम्बी। कहानी कथ्य को उतने ही शब्दों में बयान करती

है जितने शब्दों की आश्यकता हो। इन कहानियों में विषय एवं शैली की विविधता है।

ये कहानियां पाठकों को पसन्द आएंगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। मुझे पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

मैं उन सभी मित्रों का आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने इनमें से कुछ कहानियां पढ़ी हैं और अपने सुझाव दिए हैं। इनमें शामिल हैं डॉ० रेखा शर्मा, डॉ० सुधीर माथुर, डॉ० तुमन सिंह, डॉ० अलका कुलकर्णी आदि।

मैं इस संकलन को प्रकाशित करने के लिए श्री जितेन्द्र कुमार का आभारी हूँ।

मैसूर

ओमकार कौल

विषय सूची

खबर

उसे पड़ोस में सबकी पूरी-पूरी खबर रहती थी। कौन क्या कर रहा है? किसके घर क्या पक रहा है? कौन किसके घर आता-जाता है? किसके बच्चे क्या करते हैं? इस छोटे से मुहल्ले में क्या कुछ हो रहा है? उसका पूरा विवरण आपको मिसेज शर्मा से ही मिलता। उसका रौब ऐसा था कि सभी मुहल्ले वाले उनसे डरते थे। पारिवारिक मामलों में सभी उन्हीं से सलाह-मशविरा भी करते थे: महिलाएं और पुरुष दोनों। बच्चे इस बात से डरते थे कि जरा-सी भी कोई बात हुई तो उनकी शिकायत होगी, घर पर मारपीट होगी। वह छोटे-बड़े सबकी शर्मा आंटी कहलाती थी।

और तो और शर्माजी भी उससे डरते थे। उसके दफ्तर से आने का समय निश्चित था। वह पांच-दस मिनट भी देर से नहीं आ सकता था। वह हैरान रहता था कि उनके दफ्तर की बातें भी वह अक्सर उनसे पहले जान लेती। कई अन्तरंग बातें भी उसे मालूम होती थीं। यह दूसरी बात है कि शर्माजी को दिन की सभी घटनाएं सुनानी पड़ती थीं। आज दफ्तर में क्या डाक आई है? कौन-कौन आए थे और कौन नहीं। बड़े अफ्सर ने किस-किसको अपने दफ्तर में बुलाया, किससे क्या बात हुई। श्रीमती शर्मा को यह जानकारी हासिल करना अच्छा लगता था। शर्माजी अपनी पत्नी से कोई भी बात छिपा नहीं सकते थे। असल में उससे कोई बात छिप नहीं सकती थी।

शर्माजी कभी-कभी सोचते कि यदि उसके बजाए उसकी पत्नी नौकरी करती तो उसे कितनी सफलता मिलती। सूचनाएं इकट्ठा करने में वह माहिर थी और उनको अच्छी तरह पेश भी कर सकती थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्हें सफलता मिलती। खैर, उसकी एक ही कमज़ोरी थी कि वह अधिक पढ़ी लिखी नहीं थी। वह बार-बार कहती थी कि इसमें उसका कोई कसूर नहीं । वह नौवीं कक्षा में ही पढ़ती थी कि उसके मां-बाप ने उसकी शादी कर दी। शादी के बाद जल्दी बच्चे हुए। जिम्मेदारियां बढ़ीं तो वह पढ़ाई जारी न रख सकी। मगर डिगरियों का क्या? वह अब भी मुहल्ले की सभी अधिक पढ़ी-लिखी औरतों से होशियार है। सभी उसका लोहा मानती हैं।

उनका बड़ा बेटा हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद किसी दूसरे शहर में था। मुहल्ले में किसी को पता नहीं कि वह वहाँ क्या करता है। पिछले दो सालों में वह दो एक बार ही घर आया। उसकी छोटी बेटी रमा कालिज जाती थी।

आज एक विशेष घटना घटी। वैसे एकाध दिन से इस मुहल्ले में खुसर-फुसर हो रही थी। लोग तरह तरह की बातें कर रहे थे। रमा दो दिन से घर नहीं आयी। आज अखबार में एक छोटी सी खबर छपी थी कि वह किसी रमेश के साथ भाग गई है। साथ में कुछ जमा पूंजी भी ले गई है। रमेश रमा को घर पर पढ़ाता था। वह पढ़ा-लिखा बेरोज़गार युवक था। पास ही के एक मुहल्ले का रहने वाला था। किसी को भी इस बात का यकीन नहीं आ रहा था।

शर्माजी अपनी पत्नी को बार-बार यही कह रहे थे कि तुम्हारे रहते हुए यह सब कैसे हुआ? तुम्हें अपने ही घर का पता नहीं रहा? श्रीमती शर्मा बालकनी में खड़ी होकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगीं, यह खबर गलत है। ऐसा नहीं हो सकता।

साक्षात्कार

उनकी काफी प्रतिष्ठा है। बड़े-बड़े शिक्षा संस्थान उन्हें प्रायः पद चयन समिति में विषय विशेषज्ञ के तौर पर बुलाते हैं। कहा जाता है कि अपने विषय पर उन्हें अधिकार प्राप्त है। वे नपे-तुले प्रश्न पूछते हैं। प्रत्याशियों की सिटी-पिटी गुम कर देते हैं।

इस शिक्षा संस्थान में पहली बार वे विशेषज्ञ बनकर आए। पाँच प्रत्याशियों के साक्षात्कार हुए। सबसे प्रश्न पूछे। किसी से संतुष्ट न हुए। आखिर में एक प्रत्याशी आया। भीतर आते ही उसने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया। अन्य सदस्यों की ओर हाथ जोड़कर मुस्कराया। समिति के अध्यक्ष ने विषय विशेषज्ञ से प्रश्न पूछने के लिए कहा। परन्तु उनका सरल उत्तर था, "इससे प्रश्न आप ही पूछिए। यह मेरा शिष्य है। भला इससे मैं क्या पूछ सकता हूँ?" समिति के अन्य सदस्य भी भला क्या प्रश्न पूछते। वह मुस्कराता हुआ सबका अभिवादन करने के बाद कमरे से बाहर निकला। चयन उसी का हुआ।

सम्बन्ध

वे दोनों एक ही दफ्तर में काम करते थे। लम्बे अवकाश के बाद सुभाष अपने शहर से लौटा। उसे सरिता के विवाह की सूचना मिली। उसने सरिता को एक गहरे गुलाबी रंग की साड़ी में दूर से देखा। उसका सिर चकराने लगा। उसका घर पास ही था। बाबू को सूचित करके वह लंच से पहले ही घर चला गया।

सरिता लंच के समय उसके घर आई। मुस्कराते हुए सुभाष को नमस्ते की। चाहने पर भी वह मुस्करा न सका। वह अपने बेडरूम में बिस्तर पर मुँह छुपाये सुबकने लगा। सरिता पास आकर पलंग पर बैठी। उसके सिर और पीठ को सहलाने लगी। तबियत के बारे में पूछा। सुभाष पलटा। उसको देखकर वह खुले तौर पर रोने लगा। उसका चेहरा आँसुओं से भीग गया था। सरिता ने रूमाल से उसके आँसू पोंछे। उसने सुभाष को अपनी छाती से लगाया। सुभाष के आँसुओं से सरिता का ब्लाउज भी गीला होने लगा। सरिता की आँखें भी भर आईं।

कुछ मिनटों में एक दूसरे में सम्पूर्णतः खो गये। जब होश आया तो सरिता कह रही थी, विवाह मैंने सुरेश से किया है। विवाह तो करना ही था। प्यार मैं केवल तुमसे ही करती हूँ।

सुभाष अपने कपड़े ठीक करने लगा। सरिता बाथरूम में चली गयी। सरिता ने किचन में चाय बना ली। दोनों ने ड्राइंग रूम में चाय पी। दफ्तर से छुट्टी होने का समय हो गया था। वह उठकर चलने लगी। जाते-जाते पूछा, अब तुम हम दोनों को खाने पर कब बुलाओगे? मैंने सुरेश से तुम्हारी तारीफ की है। वह तुमसे मिलना चाहेगा।

मुलाकात

आकाश और अरविंद किसी कार्यशाला में मिले थे। दोनों में जान पहचान हुई। कुछ दिनों बाद आकाश किसी काम से दिल्ली आया। अरविंद से मिलने उसके दफ्तर गया। अरविंद उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने चाय मंगवाई। दोनों इधर-उधर की गपशप करने लगे।

इतने में एक सुन्दर महिला का कमरे में प्रवेश हुआ। उसका नाक-नक्श बहुत तीखा था। बाल कटे थे। वह कुछ जल्दी में थी। वह सीधे अरविंद की मेज के पास आई। अरविंद को एक लिफाफा देकर तुरन्त लौटी। उसके आने से एक भीनी-भीनी सेंट की खुशबू की लहर फैल गयी थी। आकाश के मुंह से एकदम निकला- "क्या चीज़ है। कौन है यह?"

अरविंद ने तुरन्त जबाव दिया, "यह मेरी बीवी है।"

उल्लू

अकादमी में हिमालय की कला, संस्कृति और जीव-जन्तुओं आदि की प्रदर्शनी लगी हुई थी। चारों ओर उत्साह था। विशेषकर उनके मन में जो इस क्षेत्र से सम्बन्धित रहे हैं, और अपने को विशेषज्ञ समझते हैं। इसी कारण प्रदीप प्रदर्शित वस्तुओं में कुछ अधिक ही दिलचस्पी ले रहे थे। प्रदीप से प्रदर्शित वस्तुओं पर चर्चा हुई।

अंकुर : आपने प्रदर्शनी में पहाड़ी उल्लू देखा?

प्रदीप : जी देखा।

अंकुर : उल्लू ने भी आपको देखा?

प्रदीप : हाँ, देखा।

अंकुर : पहचाना?

प्रदीप ने उत्तर नहीं दिया। अंकुर को विशेषज्ञ के उत्तर की प्रतीक्षा रही।

पुस्तक समीक्षा

उनकी पुस्तक की समीक्षा इसलिए अच्छी नहीं थी क्योंकि समीक्षक एक उच्च पद पर आसीन उन्हीं के विषय के जाने-माने विद्वान थे। पुस्तक-समीक्षा देखकर वे तिलमिलाये। अपने तीन विद्यार्थियों को चाय पर घर बुलाया। पुस्तक की समीक्षा पर चर्चा हुई। अपने विद्यार्थियों के मुंह से समीक्षक को दी जाने वाली गालियों से उनका गुस्सा ठण्डा हुआ।

उनके मन में विचार आया। तीनों विद्यार्थियों को उन्होंने पुस्तक की समीक्षाएं लिखने को कहा। तीनों एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। न वे विषय जानते थे, और न उनमें लिखने का साहस था। वह जान गया। तीनों को एक-एक करके पुस्तक की समीक्षा के प्रारूपों के श्रुतिलेख दिए। तीन पत्रिकाओं के सम्पादकों को अलग-अलग समीक्षाएं भेजी गईं।

समीक्षाएं प्रकाशित हुईं। अब पुस्तक के बारे में एक ही नकारात्मक समीक्षा थी, और तीन प्रशंसात्मक। उन्हें काफी संतोष हुआ। विद्यार्थियों को इस बात से खुशी थी कि उनके प्रकाशनों की सूची में बढ़ोत्तरी हुई।

साहस

वह बचपन से ही शर्मीला था। लड़कियों से बात करने से कतराता था। मन ही मन ज़रूर चाहता था कि उसकी भी किसी लड़की से दोस्ती हो। कई अवसर चूके। अक्सर किसी भी लड़की से बात करते समय उसकी ज़बान कांपने लगती और दिल की धड़कन बढ़ जाती।

समय बदल गया। वह नौकरी करने लगा। दफ्तर में भी वह सबसे, खासकर महिलाओ से खुलकर बात नहीं कर पाता था। लोग उसे अक्सर "बुद्धू" या "लल्लू" कहते थे।

वह बदलना चाहता था, पर कैसे? वह अपने अन्य सह कर्मचारियों को, जिनमें महिलाएं भी शामिल थीं, खुले दिल हंस-हंसकर बातें करते देखता तो कभी-कभी उसके होंठों पर भी कंपकपाहट के बदले मुस्कराहट आने लगती थी जिसे वह छिपाने की कोशिश करता था।

सुषमा पर न जाने उसे क्यों भरोसा था? वह अकेली महिला थी जो उसका मज़ाक नहीं उड़ाती थी। उसके साथ आदर से बोलती थी। सुषमा की नियुक्ति हाल ही में इस दफ्तर में हुई थी।

एक दिन लंच के समय सुषमा उसके कमरे में आई। आलोक ने उसे बैठने के लिए कहा। सुषमा बोली, "चलिए कैंटीन में चाय पीते हैं।"

आलोक एकदम तैयार हुआ। दोनों कैंटीन में दाखिल हुए। काफी भीड़ थी। एक टेबुल खाली मिली। सुषमा को वहाँ बिठाकर वह चाय लेने काउंटर पर गया। जब चाय की दो प्यालियां ट्रे में रखकर लौट रहा था, उसने दूर से ही देखा सुषमा के टेबुल पर उसका एक दूसरा साथी रमेश बैठा था। दोनों किसी बात पर खिलखिलाकर हंस रहे थे। आलोक के पांव लड़खड़ाने लगे। उसने काउंटर के पास ही एक खाली टेबुल पर चाय की ट्रे रखी और सबकी नज़र बचाकर कैंटीन से बाहर निकला। उसके दिल की धड़कन अचानक तेज़ हो गयी।

प्रीति

खाना खाकर मैं अन्दर के कमरे में आराम करने के लिए चला आया। वहाँ कोई न था। एक तकिए के सहारे मैं फर्श पर लेटा। थोड़ी ही देर में वह कमरे में आई। एक आठ-नौ महीने की बच्ची को गोद में लिए। एक हाथ में दूध की बोतल थी। मैंने बैठने की कोशिश की। उसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था। मध्यम कद, आकर्षक चेहरा। हल्का-सा मेक-अप और बालों की लटें माथे पर बिखरी हुई थीं। बड़ी-बड़ी कजरारी आंखें। उसने कढ़ाई वाला हल्का लाल सूट पहना था। बिना कुछ बोले वह खिड़की के पास आई। एक बैग से दूध का डिब्बा निकाला। दूध के पाउडर को पानी की बोतल में मिलाया। फिर मेरे पास ही कोने में बैठी और बच्चे को बोतल से दूध पिलाती रही। इतने में चाची जी भीतर आईं। वह मेरे लिए एक कप चाय ले आईं थीं। चाय की प्याली फर्श पर रखी। मैं अकेले चाय पीने से हिचकचा रहा था। मेरी हिचकिचाहट समझकर वह बोली ''आप चाय पी लीजिए।' ''पर आप?'' इतने में चाची जी बोली, ''मैं प्रीति के लिए भी ले आऊँगी।'' थोड़ी ही देर में वह एक और कप चाय ले आई और प्रीति के सामने रखी। इतने में उसकी गोदी में बोतल से दूध पीती हुई बच्ची सो गई थी। मैंने कहा, ''बच्ची सो गई है।'' ''हाँ, यह नींद में भी दूध पीती है।''

उसने पास ही फर्श पर बच्ची को लिटाया। तो यह प्रीति है। प्रीति कौन? मैं सोचता रहा। उसे कोई लड़की दरवाज़े पर बुलाने आई। वह बच्ची का ओढ़ना ठीक करके उठी। मैंने कहा, ''घबराइए नहीं। मैं यहीं पर हूँ।'' ''यदि जाग जायेगी तो हल्ला करेगी''। वह बोली।

''कोई बात नहीं। मैं बच्चे को सम्भाल सकता हूँ।'' यह सुनकर वह एकदम मुस्कराई और चल दी। उसकी आंखों में मासूमियत झलक रही थी।

चार-पांच मिनट बाद वह फिर दरवाज़े तक आई और मेरी ओर देखा। मैने हाथ से इशारा किया कि बच्ची सो रही है। वह फिर मुस्कराते हुए दरवाज़े से ही लौटी।

चाजी जी कमरे में आई तो मैंने पूछा, ''यह प्रीति कौन है?'' ''ओह! तुम जानते नहीं, मैं परिचय कराना भूल गई। यह रमेश की बहू है।''

''रमेश की?'' मैं हैरानी से बोला।

''हाँ, क्यों क्या बात है?''

''कुछ नहीं, अच्छी है'' मैं मुस्कराया।

"हाँ, बहुत ही अच्छी।" चाचीजी शरारती लहजे में बोली।

रमेश हमारे गांव का ही एक पड़ोसी लड़का है। वह किसी बैंक में काम करता है ओर आजकल हरियाणा के किसी शहर में है। मैं रमेश के बारे में सोच रहा था। उतने में बच्ची एकदम जागी। उसके रोने से पहले ही मैंने उसे गोदी में उठाया और कमरे से बाहर निकल गया। मैंने शेष दो-तीन कमरों में देखा, प्रीति वहां नहीं थी। मैं बच्ची को लेकर घर से बाहर निकला तो वह भीतर आ रही थी। मुझे देखकर थोड़ा-बहुत शर्माई। मैंने बच्ची को उसे थमाते हुए कहा, "कितनी प्यारी बच्ची है।" प्रीति बच्ची को लेकर मेरे पीछे-पीछे उसी कमरे में आई और वहां दूध की बोतल ठीक करने लगी। मैंने पूछा-

"रमेश जी कैसे हैं?"

"ठीक ही होंगे, बहुत दिनों से आये नहीं।"

"मतलब ? महीने में कितनी बार आते हैं?"

"महीने में? दो-तीन महीने में एक बार आते हैं, वह भी दो एक दिन के लिए।"

"ऐसा क्यों? आप लोग भी वहीं क्यों नहीं जाते?"

"मम्मी को वह जगह पसन्द नहीं। मेरी दोनों ननदें इसी शहर में हैं। मेरे जेठ अपनी पत्नी के साथ चंडीगढ़ में हैं। "पर अपनी सास की खातिर आप. ..?"

"वह यहाँ अकेले कैसे रह सकती हैं" हल्के से मुस्कराते हुए उसने कहा। रमेश और प्रीति का ब्याह दो वर्ष पहले हुआ था। शादी का कार्ड मेरे पास भी आया था। रमेश के पिताजी की अकस्मात मृत्यु हो चुकी थी...

मैं प्रीति के बारे में बहुत देर तक सोचता रहा। उसके प्रति आकर्षण हमदर्दी में परिवर्तित हुआ। दूसरे दिन बारात चली। मैं बस में बैठा। बस चली तो मेरी सीट के पीछे से हल्की हंसी सुनाई दी। पीछे मुड़ा तो देखा प्रीति किसी और औरत के पास बैठी थी। वह आज सुनहरे रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए थी। उसके चेहरे पर हल्का मेकअप था। उसने मुस्कराते हुए "नमस्ते" की। उसका चेहरा खुशी से भरा था।

मैंने पूछा, "श्वेता कहाँ है?"

"मम्मी के पास है।"

उसे देखकर बिलकुल महसूस नहीं हो रहा था कि वह प्रसन्न नहीं है। उसके पास खुशियों का भण्डार था जिसे वह बांटना जानती है।

यूनिटी

वह चार बहनें थीं। सभी एक दूसरे से तेज़ मिज़ाज। उनकी मां भी ऐसी ही थी। विवाह के बाद उनकी ही चलती रही। उनके पति पूरे अनुशासन में रहे। चाहने पर भी वे "चूँ" न कर पाये। सभी बहनों के बेटे हुए और बेटियां भी। विधि की विडम्बना यह कि बेटियाँ अपनी माताओं पर गईं। और बेटे अपने पिताओं के अनुरूप थे।

समय बीता। चारों की नई बहुएं आईं। बहुओं का चयन भी उन्होंने ऐसा किया कि वे दब्बू न हों। कोई भी बहू अपनी सास-से दबी नहीं। थोड़े ही दिनों में सभी बहुएं अपनी सासों से तंग आ गई अब वे उनके साथ नहीं रहना चाहती थीं। दो तो अलग रहने में सफल रहीं।

बहुएं अक्सर एक दूसरे से मिलती रहीं। सभी परेशान थीं। सबकी एक ही जैसी परेशानियां थीं। वे एकमत नहीं हो पाईं। सभी समझौता करने पर विवश थीं। वे एक दूसरे की सलाह भी मान नहीं रही थीं क्योंकि वे सभी एक दूसरे से अपने को बुद्धिमान समझने लगी थीं। सासें उनमें यह भावना जगाने में कामयाब रहीं कि उनकी बहुएं आपस में कोई सलाह-मशविरा न करें और वे एक दूसरे से दूर रहें।

बहुएं विवश थीं। वह अलग-अलग तरीकों से जूझती रहीं। उनमें से एक बार-बार कह रही थी, "काश, हम बहुओं की यूनिटी होती तो हमने अपनी सासों को हरिद्वार पहुँचा दिया होता।" किसी ने पूछा, "गंगाजी के किनारे या गंगाजी में? वे बड़े इतमिनान से बोलीं, "बस किनारे तक... वे बेशर्म थोड़े ही हैं कि...।"

पहचान

उसे हमेशा चिंता रहती थी कि उसके अपने नाम की पहचान बनी रहे। उसे इस बात का गौरव था कि उसका नाम सुषमा है। जब वह बच्ची थी तो उसे "मुन्नी" या "छुटकी" कहना अच्छा नहीं लगता था। वह हमेशा इस बात पर चिढ़ जाती थी कि उसे "मुन्नी" या "छुटकी" आदि कोई क्यों कहे जब कि उसका एक सुन्दर नाम सुषमा था। उसकी एक पहचान थी।

बचपन में ड्राइंग में उसकी विशेष रुचि थी। वह जब भी कुछ समय पाती तो रेखाएं खींचती थी। या उल्टा-सीधा चित्र या मॉडल बनाती रहती, उसके नीचे अपने पूरे हस्ताक्षर करना न भूलती। वह गुमनाम नहीं रहना चाहती थी। वह कविताएं भी लिखती थी। स्कूल एवं कालिज मैगज़ीनों में उसके नाम की कुछ कविताएं छपती भी थीं।

इस तरह चारों ओर सुषमा की छाप थी। वह जब भी पत्र लिखती थी, तो कोई-न-कोई स्केच अवश्य बनाती थी। हर पत्र में उसकी अपनी कविताओं के उदाहरण भी होते थे। उसके पत्र भी अलग किस्म के थे। बचपन से ही उसने अपना नाम कमाने की ठान ली थी। उसके परिचितों को थोड़ी बहुत ईर्ष्या-सी भी थी। उसने एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। उसको शिक्षक की नौकरी मिली। उसका पत्राचार बढ़ता गया। मेरे पास उसके पत्र लगातार आते रहे। उसके पत्र में स्केच रहते थे और कविताओं के उदाहरण भी। उसका विवाह हुआ। उसने अपना नाम नहीं बदला। उसे यकीन था कि उसके नाम की अपनी पहचान है। वह अपने को मिसेज़ या श्रीमती नहीं बतलाना चाहती थी। वह सुषमा थी और बस सुषमा। वह अपने सहकर्मियों से भी यही कहने लगी।

कुछ वर्ष बीते। उसके पत्र आने बंद हुए। मैं इस बार किसी काम से उसके शहर में आया। मैं उससे मिलना चाहता था। उसके स्कूल में जाकर पता चला कि वह समीप ही किसी मुहल्ले में रहती है। वहां पहुँच कर कई लोगों से उसके घर का पता पूछा पर नहीं मिला। फिर किसी से पता चला कि एक "मास्टरनी"

समीप के मकान में रहती है। मैं उस मकान में पहुँचा। मकान मालिक बाहर आए। मैंने पूछा,

"सुषमा मैडम यहां रहती है क्या?"
"जी, पप्पू की मम्मी यहीं रहती है।"
उसने आवाज़ लगाई,
"पप्पू की मम्मी आपसे कोई मिलने आया है।"

कुछ ही समय के बाद पप्पू की मम्मी यानी सुषमा बाहर आई। पप्पू भी साथ था। अब उसकी अपनी कोई पहचान नहीं थी।

स्पर्श

इस कैम्प में घूमते हुए एक टैंट के सामने आकर उसके पांव रुक गये। टैंट के पास ही एक जानी-पहचानी सूरत नज़र आई। वह पहचानने की कोशिश करने लगा। वह सोच ही रहा था कि उसने मुस्कराते हुए नमस्ते की। अभिवादन का प्रत्युत्तर देकर भी वह एकदम पहचान न पाया। वह इसकी उधेड़बुन समझ गई। उसने कहा, "नहीं पहचाना, पहचानोगे भी कैसे? मैं उमा हूँ" "उमा, ओह ! माफ करना.... मैं .... आप यहां कैसे?"

वह उसके चेहरे में बरसों पहले बिछुड़ा हुआ भोला-सा कमसिन चेहरा तलाश करने लगा। उसके बाएं गाल पर काला तिल बरकार था। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में आकर्षण अभी भी था। उसके बात करने का अंदाज़ वही था। हां, उसके लम्बे-लम्बे बाल उसके माथे पर बिखरे रहते थे, अब बंधे थे। बालों का रंग कुदरती नहीं लग रहा था। उनमे हेयर डाई की चमक थी। हां, उसके सुगठित शरीर में उस दुबले-पतले कोमल स्वरूप को ढूँढना मुश्किल था। कुछ क्षण वह इन्हीं विचारों में खोया तो उमा बोली, "आइए, अन्दर आइए। यही हमारा घर है।

उसने टैंट का अधखुला पर्दा हटाया और भीतर चली गई। वहां एक डबल बेड पड़ा हुआ था और एक तरफ दो लकड़ी की कुर्सियां। वह भीतर आया और एक कुर्सी पर बैठा। उमा बेड पर बैठी। उसने टेबल फैन चलाया। अन्दर गर्मी थी। अतुल के मन में कई प्रश्न उभरे। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न था, "तुम्हारे परिवार में कौन-कौन हैं?" "दो बच्चे हैं, एक लड़का और एक लड़की। लड़का बारहवीं कक्षा में है और लड़की दसवीं कक्षा में।"

"और उनके पिता?"
"वह अब इस संसार में नहीं है।'
"इस बात का मुझे अफसोस है। क्या बात हुई?"
"वे पांच वर्ष पहले गुज़र गए। उनका एक्सीडेंट हुआ था।"
"सॉरी मैंने सुना ही नहीं।।"
"आपको कैसे पता चलता आप विदेश में थे।"
"तुम्हें ...... आपको कैसे पता चला कि मैं विदेश में था।"
"मुझे सब पता है। मैं आपके बारे में सब कुछ जानती हूँ।"
"क्या जानती हो?"
"यही कि आपकी शादी हुई है। आपके दो बच्चे हैं। आप विदेश चले गए।

लौटकर किसी ऊँचें पद पर हैं। आजकल आप कोई फिल्म बनाना चाहते हैं।"

"पर तुम्हें कैसे मालूम?"

"अखबार में छपा है। खैर छोड़िए इन बातों को। मैं चाय बनाती हूँ।"

"मै चाय नहीं पीऊँगा।"

"क्यों नहीं? हम गरीब हैं। इसलिए?"

"नहीं, यह बात नहीं है, मैं चाय बहुत कम पीता हूँ। खैर बना लो।"

उमा स्टोव जलाकर चाय बनाने लगी। अतुल को भरोसा नहीं हो रहा था। उसकी आंखों के सामने बीस साल पहले का दृश्य आया।

वह एम.ए. कर रहा था और गर्मियों की छुट्टी में गांव में था। उमा अपनी बड़ी बहन के यहां आई थी। जिसकी शादी उसी गांव में हुई थी। वह बहुत नटखट थी। अतुल बहुत कोशिश करने के बावजूद भी उससे सम्पर्क न बढ़ा सका। वह कई बार अतुल की छोटी बहिन के साथ उसके घर भी आई। एक बार सीढ़ियों पर उतरते समय दोनों एकदम रुक गए थे। अतुल ने बड़ी हिम्मत करके उसकी बांह पकड़ी थी। उमा ने बड़ी फुर्ती से अपनी बांह छुडाई और बड़ी तेज़ी से सीढ़ियां उतरी। अतुल को यह स्पर्श बहुत अच्छा लगा। अतुल और उमा को फिर कभी अकेले मिलने का अवसर न मिला। दोनों एक दूसरे को दूर से देखते और मुस्कराते रहते। बस केवल इतना परिचय था।

छुट्टियां समाप्त हुईं। अतुल शहर चला गया। छह महीने बाद घर आया तो उसे पता चला कि उमा का विवाह हुआ है। अतुल को उमा का मासूम चेहरा बार-बार याद आने लगा। समय गुज़रा। धीरे-धीरे वह उमा को भूल गया। शिक्षा समाप्त हुई। वह विदेश गया। लौटने पर किसी अन्य राज्य में नौकरी मिली। उसका विवाह हुआ। बच्चे हुए।

कश्मीर में हालत बिगड़ गए। हज़ारों की तादाद में कश्मीरी शरणार्थी जम्मू और अन्य शहरों में आ गए। अतुल के मन में शरणार्थियों पर फिल्म बनाने का विचार आया। जम्मू के एक शरणार्थी शिविर का दौरा कर रहा था शायद फिल्म का मसौदा तैयार करने के इरादे से। उसने कभी नहीं सोचा कि उसकी मुलाकात उमा से होगी।

वह इन्हीं विचारों में डूबा था कि उमा ने चाय का कप उसके हाथ में थमाया। चाय का कप लेते हुए उसने उमा के हाथ का स्पर्श अनुभव किया। अतुल ने उमा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उमा ने अपना हाथ नहीं छुड़ाया। अतुल ने नज़र उठाई तो उमा की आंखे आंसुओं से भर गई थीं।

चेतावनी

उसका परिचय यूँ दिया गया-'चिंताओं से मुक्त, खेलकूद और सैर-सपाटों में दिलचस्पी, और कम बोलने वाला। हमेशा सुस्त-सा लगता है मगर उसे सुस्त कभी न समझ लीजिए'।

परिचय प्राप्त करके सभी मुस्कराए। प्रशिक्षण की कक्षाओं में वह वाकई कम बोलता रहा। चाय के समय भी भीड़ से अलग रहता। लोग पता नहीं क्या समझते रहे। फिर समूह-कार्य करने की बारी आई। एक बैठक के अभ्यास का दृष्यांकन। उसे बैठक के अध्यक्ष का रोल मिला, माया को कार्मिक मैनेजर का और राजी को कार्यक्रम सलाहकार का। बैठक शुरू हुई। माया ने अपने सभी मुद्दे मनवाये और अपने पक्ष में निर्णय करा लिए। राजी पता नहीं क्यों कुढ़ गई। उसकी आंखों में गुस्सा इस बात पर उतर आया कि अध्यक्ष महोदय कार्मिक मैनेजर से ही हर मुद्दे पर सलाह-मशविरा लेते रहे।

इस अभ्यास पर टीका-टिप्पणी हुई। राजी ने बार-बार इसी बात को दोहराया। कक्षा के बाहर भी वह इसके बारे में बातें करने लगी। उसे यकीन हुआ कि अध्यक्ष का रोल एक सुस्त दिखाई देने वाले व्यक्ति ने नहीं किया था परन्तु किसी चतुर व्यक्ति ने जिसके बारे में चेतावनी पहले से ही दी गई थी।

राजी ने अपने मन की बात किसी से न छुपाई। माया से कहा, "पता नहीं तुममें ऐसा कौन-सा गुण है कि कमल के मन को तुमने एकदम जीत लिया।" माया को राजी की बातें फिज़ूल-सी लग रही थीं। उसने कभी उसकी बातों का बुरा न माना। वह अन्य लोगों की तरह ही कमल से भी बोलती रही। राजी के सामने कुछ अधिक ही।

उस दिन विदाई का डिनर था। डिनर बाहर लॉन में था। कई और मेहमान भी आए हुए थे। भीतर एक कमरे में कॉकटेल था। सबके गिलास भरे हुए थे। कमल यहाँ भी अलग-सा दिखाई दे रहा था। राजी और माया उसके सामने सोफे पर बैठीं। इधर-उधर की बातचीत हो रही थी। अग्रवाल उन्हें कोई जोक सुना रहा था। सभी हंस रहे थे। अब राजी का गुस्सा कम हुआ था।

बहुत देर हो गई थी। दूसरे दिन सबको यहाँ से विदा होना था। सभी एक दूसरे से हाथ मिला रहे थे।

माया आज सवेरे ट्रेन से जा रही थी। वह सबसे विदाई ले रही थी। राजी अपने कमरे में नहीं थी। माया ने कमल के कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। थोड़ी देर के बाद कमल ने दरवाज़ा खोला। माया कमल के कमरे में राजी को देखकर हैरान हुई। उसने दोनों से विदाई ली। कमल के चेहरे पर गंभीरता बरकरार थी और राजी के होंठों पर मुस्कराहट।

आक्रोश

इस संस्थान में आयु में सबसे वरिष्ठ होने के नाते वे आदर से ''दादा'' कहलाते थे। वैसे उन्होंने पाँच वर्ष पहले, अवकाश ग्रहण किया है। उनकी इस संस्थान में पुनः नियुक्ति हुई। वे लगभग पैंसठ वर्ष के थे। उनका विषय इतिहास था। इस संस्थान में किसी भी विषय पर कोई भी बैठक क्यों न हो, वे अपनी विशेषज्ञता प्रकट करना अपना धर्म समझते थे और किसी भी विषय पर अपनी सलाह देते थे। चाहे किसी भी विषय की पढ़ाई के बारे में चर्चा हो-कानून, प्रशासन, प्रबंध, इतिहास, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, भाषा विज्ञान, संस्कृति आदि। कोई भी बैठक उनके विचारों को सुनने के बिना पूरी नहीं होती थी। यह दूसरी बात थी कि उनके विचारों पर हमेशा अमल नहीं होता था। किसी भी विशेष अवसर का आयोजन हो तो वे पीछे नहीं रहते। उनसे कोई सलाह ले या न ले, वे हमेशा अपनी सलाह देने के लिए तैयार रहते थे।

संस्थान में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हो रहा था। उसमे विद्यार्थी एक विशेष नृत्य पेश करना चाहते थे। लड़कियों को नृत्य एक विशेषज्ञ शिक्षिका सिखा रही थीं। दादा बिना बुलाए रिहर्सल देखने के लिए हॉल में पहुँचें। उन्होंने नृत्य का रिहर्सल देखा और अपनी आदत से मजबूर नृत्य पर सलाह देने लगे। शिक्षिका बाहर से आई थी। वह अपने विषय की विशेषज्ञ थी। उन्हें दादा के सुझाव हास्यास्पद लगे। उन्होंने बड़ी नर्मी से कहा, ''यदि आप ही नृत्य सिखा सकते थे तो मुझे यहाँ आमंत्रित करने की क्या आवश्यकता थी?''

दादा की विशेषज्ञता का विरोध पहली बार हुआ था। उनका चेहरा क्रोध से तिलमिला उठा। वे हॉल से बाहर निकले। उन्होंने अपने को अपमानित समझा और शिक्षिका को सबक सिखाने की ठान ली।

संस्थान के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों ने हमदर्दी ज़ाहिर करने की कोशिश की। सबकी राय थी कि शिक्षिका को दादा का अपमान नहीं करना चाहिए था। फैसला हुआ कि नृत्य शिक्षिका को वापिस भेजा जाए। दादा पहले खुशी से मुस्कराए फिर एकदम उन्हें कुछ विचार आया। बोले, ''नहीं, उन्हें नृत्य सिखाने दीजिए। मैं जानता हूँ कि क्या करना चाहिए।''

सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने का समय आया। इसका सबको बेसब्री से इन्तज़ार था। हॉल दर्शकों से खचाखच भरा था। दादा पहली पंक्ति में विराजमान थे। कई प्रोग्राम हुए। दर्शक दाद देते रहे, जिनमें दादा भी शामिल थे। जब नृत्य दिखाया जाना था। उद्घोषणा होते ही दादा हॉल से एकदम उठकर बाहर चले गए। वे ठीक उस समय हॉल में लौटे जब नृत्य का प्रदर्शन समाप्त हुआ था और तालियों की गूँज रुक गई थी। दादा मुस्कराते हुए हॉल में आए। उनके चेहरे पर आत्मविश्वास की छाप थी। उन्होंने नृत्य प्रदर्शन पर ताली नहीं बजाई थी। उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट किया था।

शक

सुनील जब अपने ऑफिस पहुँचा तो निशा को अपने कमरे में देखकर हैरान हुआ। उसने सोचा ज़रूर कोई बात है। वह आज इनसे भी पहले ऑफिस आई थी। निशा की मेज़ पर ढेर सारे कागज़ अस्त-व्यस्त पड़े थे। वह कुछ लिख रही थी। निशा को नज़दीक से देखकर उसे यकीन हुआ कि आज कोई खास बात हुई है। लगता था कि निशा नींद से उठकर ही ऑफिस आई थी या किसी से लड़-झगड़कर। उसके बाल कुछ अव्यवस्थित थे। चेहरे पर मेकअप का नामो-निशान न था। साड़ी भी साधारण ही पहने हुए थी।

सुनील के भीतर आते ही निशा खड़ी हुई। उन्हें धीरे-से नमस्ते की। नमस्ते का जवाब देकर सुनील ने पूछा,

"क्या बात हुई? इतनी जल्दी ऑफिस?"

"बस कुछ काम था।"

निशा की आवाज़ भी आज भारी-सी थी। सुनील ने बात आगे बढ़ाना अच्छा न समझा। वह अपने कमरे में चला गया। उसे विचार आया शायद अपने पति से कहा-सुनी हुई होगी। वह इसकी निजी बात में दखल नहीं देना चाहता था।

थोड़ी ही देर में निशा सुनील के कमरे में आई और चुपचाप सुनील के सामने की कुर्सी पर बैठ गई। सुनील ने पूछा,

"हो गया काम?"

"जी ... हो गया। यह लीजिए।"

उसने एक कागज़ सुनील की ओर बढ़ाया। सुनील उसे पढ़कर हैरान हुआ। निशा का त्याग-पत्र था।

"आखिर क्यों?"

"बस यूँ ही।"

"क्या मतलब। इतनी गम्भीर बात पर भला इतनी जल्दी फैसला!"

निशा कुछ न बोलकर फूट-फूटकर रो पड़ी। सुनील की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

"क्या कोई और रास्ता नहीं है?"

"जी है। मगर मुश्किल।"

"मुश्किल कैसा?"

"आपका यहाँ से ट्रांसफर।"

"मेरा ट्रांसफर? सुनील की समझ में कुछ-कुछ आने लगा।

सुनील मुस्कराकर बोला, "यदि तुम्हे इसी बात से खुशी होगी, तो मैं अपना तबादला करवा दूँगा। तुम इस्तिफा मत दो।"

सुनील पूछना चाहता था कि आखिर बात यहाँ तक कैसे पहुँची। पर पूछ न सका। निशा की आंखें आंसुओं से भरी थीं। उसने कहा-रमेश का कोई कसूर नहीं है। असल में कुसुम इसके लिए ज़िम्मेदार है।

"तुम्हारी नन्द कुसुम?"

"हाँ। पिछले महीने रमेश किसी सरकारी काम से दिल्ली गया था। तीन दिन के लिए। कुसुम कालिज जाती रही। वह एक रात घर नहीं लौटी। मैं बहुत परेशान हुई। मैंने उससे पूछताछ की। वह इधर-उधर के बहाने करके टालती रही। मैं इस बात से बहुत परेशान हुई। जब रमेश टूर से लौटा तो मैंने उससे ज़िक्र किया। रमेश को बहुत गुस्सा आया। वह कुसुम पर बुरी तरह बरसा।

तब से कुसुम ने मेरे साथ बात करना बन्द कर दिया। वह किसी भी बहाने की ताक में थी। और जब पिछले हफ्ते एक दिन मैं ऑफिस से देर से आपके साथ घर लौटी, तो पता नहीं क्या हुआ। उसने रमेश की बुद्धि ही फेर दी। रमेश उल्टी-सीधी बातें सुनाता रहा। मैं इतनी तंग आ गई कि नौकरी छोड़ने पर मजबूर हूँ"।

सुनील के दिल को धक्का लगा। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि निशा के प्रति उसके स्नेहपूर्ण सम्बन्ध को शक की नज़र से भी देखा जाएगा। और वह भी उसी के घरवालों द्वारा।

सुनील ने चुपचाप निशा का त्यागपत्र फाड़ डाला। उसका तबादला इतनी जल्दी हो भी नहीं सकता था। उसने फिलहाल एक लम्बे अवकाश पर जाने के लिए अर्ज़ी दे दी।

इम्तिहान

वह स्वयं निरक्षर है। उसे अपने पोतों और पोतियों की शिक्षा सम्बन्धी योग्यताओं पर पूरा भरोसा है। वह उन्हें हमेशा लिखते-पढ़ते देखती है। उनके पास अपनी दादी से कहानियां सुनने को भी फ़ुसर्त नहीं है। जब वह छोटी थी तब बात दूसरी थी। अब ज़माना बदल चुका है। बहुत ही कम उम्र में ही बच्चों को स्कूल भेजा जाता है। उन्हें स्कूल में ही नहीं, घर पर भी होम वर्क करना पड़ता है। उनके लिए खेलने-कूदने के लिए भी अधिक समय नहीं मिलता।

उसे मालूम है कि पढ़ाई करने के बावजूद भी इन बच्चों के हमेशा अच्छे अंक नहीं आते। उनके अध्यापक भी शिकायत करते हैं।

अबकी बार बच्चों की परीक्षा हुई। परिणाम ठीक नहीं आए। वह गुस्से में थी। बच्चों के मां-बाप ने परेशानी ज़ाहिर की। उसने बच्चों की काबलियत पर पूरा भरोसा प्रकट करते हुए कहा,

"अगर इम्तिहान में सिर्फ वही गिने चुने प्रश्न पूछे जाए जो इन बच्चों को नहीं आते हों तो इसमें बच्चों का क्या दोष? अक्सर ऐसा ही होता है कि वहीं प्रश्न परीक्षा में आते है जो बच्चों ने नहीं पढ़े होते।"

सुन्दरता

सृजनात्मकता विषय की प्रशिक्षण कक्षा में किसी ने अध्यापक से पूछा "सुन्दरता की परिभाषा दीजिए।" अध्यापक इसके लिए तैयार नहीं था। उसकी दृष्टि एकदम किसी व्यक्ति विशेष की ओर गई। नज़रें मिलते ही वह मुस्कराई, और उसने नज़रें झुका दी। इस अनुभव को अध्यापक के लिए परिभाषा में बांधना कठिन था।

तन्हाई

उसे आज यदि कोई चीज़ पसन्द है तो वह है तन्हाई। उसके विद्यार्थी जीवन में ऐसा कुछ न था। वह हमेशा अपनी सहेलियों से घिरी रहती थी। वह एक संयुक्त परिवार की अंग थी। अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय उसके विवाह के लिए कई प्रस्ताव आए। उसके माता पिता जल्दी में फैसला न कर पाए। इसी बीच दक्षिण की किसी युनिवर्सिटी में प्राध्यापिका के पद पर उसकी नियुक्ति हुई। उसे आशा थी कि दो तीन वर्ष वहां रहकर उसे पुनः उत्तर के किसी विश्वविद्यालय में नौकरी मिल जायेगी। कोशिश करती रही, पर न मिल सकी। फिर धीरे-धीरे उत्तर से दक्षिण की भौगोलिक दूरी उसको उत्तर से अलग करती रही। विवाह की बात यदि कहीं होती थी तो उसकी नौकरी बीच में रुकावट बनकर खड़ी होती। इसी तरह एक-एक वर्ष बीतता रहा। और उम्र के बढ़ने के साथ-साथ विवाह करने की आशा भी समाप्त हुई।

एक बार वह रेल में सफर कर रही थी। किसी हम उम्र व्यक्ति से उसकी मुलाकात हुई। वह किसी और प्रदेश और जाति का था। थोड़े ही परिचय के बाद उस सज्जन ने उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया। विवाह हुआ।

किसी कारण विवाह का यह बंधन-सूत्र बहुत ही जल्दी समाप्त हुआ। उसे लगा कि अपने पति को समझने में उसने भूल की है। उसे इस बात का भी एहसास हुआ कि वह अपने एकाकी जीवन में इतनी घुलमिल गई है कि इसमें वह किसी और के साथ रह नहीं सकती।

उसे तन्हाई से लगाव है। तन्हाई में सड़क का शोर, गली बाज़ारों में शोर शराबे से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। हाँ, इतने बड़े मकान में किसी और व्यक्ति को अधिक देर वह बर्दाशत नहीं कर सकती। उसे तन्हाई से इतना लगाव हो गया है कि अपने घर में वह किसी अन्य व्यक्ति की पदचाप भी नहीं सुन सकती।

अब भी किसी के यहाँ मेहमान बनकर जाना पड़ता है तो वह वहां खुश नहीं रहती। परिवार के और सदस्यों के साथ भी घुलमिल जाना, उसके लिए मुश्किल है। वह हमेशा अपने घर लौटने के लिए आतुर हो उठती है। अपना सूना घर जहाँ किसी दूसरे का एहसास नहीं होता। उसे अपनी तन्हाई से इतना प्यार है, वह इसके बिना रह नहीं सकती।

पत्र

"अपना पता डायरी में लिखो" मैंने डायरी सामने करते हुए कहा।

"क्या फायदा? न मैं पत्र लिखूंगी और न आपसे पत्र की आशा ही रखूंगी" उसने सहज ही कहा।

"खूब! मैं भी पत्र कम लिखता हूँ।"

उसने डायरी में अपना नाम व पता लिखा। डायरी लौटाई।

उसके जाने के एक सप्ताह के बाद उसका टेलिफोन आया। मुझे हैरानी नहीं हुई। बोली, "मैं टेलीफोन करना नहीं चाहती थी, खैर.... क्या हाल है?"

दो तीन दिन के बाद नए वर्ष के अवसर पर एक कार्ड आया और उसके साथ हिंदी में लिखा बिना किसी सम्बोधन का पत्र।

मैंने जवाब नहीं लिखा। कई बार मन में आया लिख दूंगा। पर लिखूंगा क्या? लिखने को क्या है? औपचारिक हाल चाल! इसके लिए मैं मजबूरी में ही पत्र लिखता हूँ-अपने पिताजी को कभी कभार। और किसे? शायद ही और किसी को लिखा हो।

जब भी मै उसके बारे में सोचता हूँ, अजीब सा लगता है। उसके बारे में मेरा इम्प्रेशन क्या था और क्या निकला। मै अपनी आदत से मजबूर होकर उससे मज़ाक करता रहा पर वह समझ न पाई। उसने इसका मतलब ही दूसरा निकाला। यदि वह मुझे डिनर के लिए न्यौता न देती तो शायद ही मुझे पता चलता कि उसके मन में गलतफहमी भी है।

उसने कहा "इतिहास दोहराया जाता है। आप क्यों ऐसा कर रहे हैं ? इससे क्या मिलेगा।" "इतिहास दोहराना। मैं समझा नहीं। कौन सा इतिहास और किसका इतिहास?"

मेरी उधेडबुन को उसने सुलझाने के लिए पूछा "आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

मैं और हैरान हुआ। मेरे दिल में यह कभी आया नहीं था कि मैं उससे कुछ चाहता भी हूँ।

वह फिर बोली, "आपने मुझमें क्या देखा?" मैं और भी हैरान हुआ। मैं कैसे कहूँ कि मैंने तुम्हारे बारे में कभी सोचा तक नहीं। जहां तक पसन्द की बात है, मैं क्या कह सकता हूँ। पर मैंने मौके की नज़ाकत देखते हुए कहा,

"आप बिल्कुल अलग किस्म की हैं। मुझे आम तरह के व्यक्ति पसन्द नहीं आते। आप में ज़रूर ऐसी कोई बात है जो सहज ही किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकती है...।" मैं यह कहते हुए सोचने लगा, कहीं मैंने अधिक तो नहीं कहा। वह बोली, "पर आप चाहते क्या हैं?"

इस प्रश्न से मैं और उलझ गया। कैसे उससे कहूं, कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं थोड़ी देर चुप रहा। वह बोली,

"आपको मांगना भी नहीं आता। डू यू वॉंट टु किस मी, होल्ड मी या और कुछ..."

मैं इसका सुझाव सुनने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। मैंने हिम्मत बटोर कर कहा,

"मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। कोई वस्तु पसन्द करना या न करना मेरी अपनी समस्या है। मैं जानता हूँ कि मुझे क्या चाहिए। आप निश्चित रहिए।" मेरे शब्द सुनकर वह हैरानी से मेरी और देखती रही। उसने कहा, "यू डिज़र्व मोर दैन व्हाट यू हैव।"

दस बज चुके थे। हम डिनर लेकर गेस्ट हाऊस लौटे। इतने दिनों के बाद कभी-कभार उसकी याद आती है। सोचता हूँ पत्र लिखूँ। क्या लिखूंगा? यह समझ में नहीं आता।

सोच

दोपहर का खाना खाकर उसने अपने बर्तन धोए। वहाँ से एक अजनबी घुड़सवार आया। वह उसके गांव की ओर जा रहा था। उसने सोचाा क्यों न मैं अपने खाली बर्तन इसी के साथ घर भेज दूँ। मुझे बाद में उठाने न पड़ेगें। उसने घुड़सवार से निवेदन किया

"आप मेरे गांव से गुज़र रहे हैं। आप मेरे ये बर्तन लेकर मेरे घर छोड़ दीजिए।"

घुडसवार ने मना करते हुए का, "मैं जल्दी में हूँ। तुम्हारा घर ढूँढ़ने के लिए मेरे पास समय नहीं है।"

कुछ दूर आगे चलकर घुड़सवार ने सोचा, "मैंने गलती की। मुझे मुफ्त में ही कुछ अच्छे बर्तन मिल रहे थे। मै उन्हें अपने घर तो ले जा सकता था। न मैं उसे जानता हूँ और न यह मुझे। यह सोचकर वह लौटा और उसने किसान के पास जाकर कहा, "मैने सोचा कि मैं तुम्हारे गांव जा ही रहा हूँ। मैं तुम्हारे बर्तन भी ले जाऊँगा। क्या फरक पड़ता है। दे दो बर्तन।"

किसान ने उसकी बात सुनी और मुस्कराते हुए कहा,

"जो तुमने सोचा वह मैंने भी सोचा। मैं अब बर्तन नहीं दे सकता।

लाभ

वह काम की तलाश में निकला। उसे एक घोड़ा मिला। घोड़ा लेकर अपने गाँव लौटा। घोड़ा देखकर उसकी पत्नी हैरान हुई। उसने पत्नी से कहा कि अब वह घोड़ों का व्यापार करेगा। घोड़े खरीदेगा और बेचेगा। इस व्यापार में काफी लाभ होता है।

दूसरे दिन वह सवेरे घोड़े को बेचने चला। कुछ दूर जाकर उसे एक व्यक्ति मिला। उसने घोड़े की तारीफ करके पूछा,

"इसे बेचना चाहते हो?"

"हाँ, इसी लिए मैं घर से चला हूँ। मैं घोड़ों का व्यपारी हूँ।"

"मैं इसे खरीदना चाहता हूँ। पहले मैं इसकी सवारी करूँगा। फिर मोल भाव तय करेंगे।"

"ठीक है।" बड़ी आसानी से खरीदार के मिलने पर वह प्रसन्न हुआ।

खरीदार ने अपनी कांगड़ी और खड़ाऊ उसके पास रखीं और घोड़े पर सवार हुआ। उसने ज्योंही चाबुक मारा, घोड़ा सरपट दौड़ा, और कुछ ही देर में वह आखों से ओझल हो गया। देर तक व्यापारी ने उसकी प्रतीक्षा की पर खरीदार नहीं लौटा। शाम को निराश होकर व्यापारी घर लौटा। पत्नी ने पूछा,

"घोड़ा बेचा? कितना लाभ हुआ?" उसने निश्चित होकर कहा,

"घोड़ा उतने का ही बिका जितने का मिला था। हाँ, लाभ में कांगड़ी और खड़ाऊँ मिलीं।

अधिकार

कौशल्या नब्बें वर्ष की है। वह मकान के बीच वाले कमरे में खाट पर लेटी रहती है। यहाँ से उसे घर में सभी आने जाने वालों पर नज़र रहती है। उसके आस-पास कोई न कोई ज़रूर बैठा रहता है-उससे बात करने या उसकी बात सुनने के लिए। वह उठ-फिर नहीं सकती, मगर अपने परिवार और आस-पड़ोस की सभी घटनाओं से वह भली भांति परिचित है। इतना ही नहीं, इस परिवार में उसकी मर्ज़ी के बिना कुछ नहीं हो सकता। हर छोटी बड़ी बात में उससे मशवरा लेना ज़रूरी है। रोज़ खाने में क्या बनेगा से लेकर परिवार के सभी संबंधियों में किसका रिश्ता कहाँ होगा-ये सभी बातें उससे पूछ कर होती हैं।

कौशल्या अपनी विधवा बेटी शांता के घर लगभग पिछले चालीस वर्षों से रहती आई है। कौशल्या की दो और बेटियाँ और एक पुत्र हैं। शांता जवानी में ही विधवा हुई। उसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे। एक लड़का और एक लड़की। शांता को अपने पति के दफ्तर में नौकरी मिली। उसके बच्चों की देख-भाल करने के लिए कौशल्या उसके घर में रही। कौशल्या ने घर का सारा काम संभाला। उसने बच्चों की परवरिश में कोई कसर नहीं छोड़ी। घर के काम में बेटी का हाथ बटाती रही। यदि वह हिम्मत न करती तो उसकी बेटी न नौकरी ही कर पाती और न उसका गुज़ारा ही चलता।

इस तरह इस घर-परिवार के तमाम छोटे-बड़े फैसले वही करती रही है। अपने को वह इस परिवार की मुख्य सदस्या मानती रही। वह मानती है कि यह घर-परिवार उसी का है और उसकी मर्ज़ी के बिना यहाँ पत्ता भी हिल नहीं सकता।

इस परिवार में समय के साथ-साथ काफी विस्तार हुआ। बच्चे बड़े हुए। उनका विवाह हुआ। उनके भी आगे बच्चे हुए। परिवार के विस्तार के साथ-साथ कौशल्या के अधिकार और भी बढ़ गए। वह अब कुछ वर्षों से बीमार चल रही है। परिवार वाले तरह-तरह का इलाज कराते रहे। उसका आपरेशन भी हुआ। आपरेशन के बाद पता नहीं क्यों वह अपनी बीमारी का दोष शांता और परिवार के अन्य सदस्यों को देती है। वह इलाज से संतुष्ट नहीं है। उसके इस व्यवहार

से सभी परेशान हैं। उसकी बेटी शांता को सांस लेने की फुर्सत नहीं है। वह घर गृहस्थी के काम में व्यस्त रहती है। उसने अपनी माँ के इलाज कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बहुत पैसे खर्च किए। इस पर अपनी माँ की खरी-खोटी बराबर सुननी पड़ती हैं। वह अकसर कहती है "आपरेशन क्यों कराया? इलाज ठीक नहीं हो रहा है। मुझे मार डालना चाहती हो।" कौशल्या से जो कोई भी मिलने आता है वह शांता और परिवार के अन्य सदस्यों की शिकायत करती है। सभी जानते हैं कि यह कौशल्या की ज़्यादती है मगर उससे कहे कौन। वे दिलासा देते हैं "सभी तुम्हारी दिलोजान से सेवा कर रहे हैं।"

अगर कोई ऐसा कहे भी। तो उसका जवाब होता है, "मै मालकिन हूँ। घर-परिवार मेरा है। तुम चाहते हो कि मैं मर जाऊँ और मेरा अधिकार कोई और छीन ले।"

इतनी सी बात

ट्रेन चली। हम दोनों आमने-सामने वाली सीटों पर बैठे थे। वह खिड़की से बाहर देखती हुई गुमसुम सी थी और मैं भी अपने ही विचारों में निमग्न। ट्रेन अगला स्टेशन आने से पहले ही रुकी। मैं बैठे-बैठे तंग आ गया था। वह भी कभी घड़ी देखती थी और कभी बाहर की ओर।

"आप कहाँ जा रही है?" मैंने यूंही पूछ लिया।

"दिल्ली। और आप?"

"मै भी दिल्ली जा रहा हूँ। क्या आप पढ़ती हैं?"

"नहीं, नौकरी करती हूँ।" वह बोली।

"नौकरी ? अभी आपकी उम्र...."। मेरे मुँह से निकला। वह २०-२२ वर्ष की लग रही थी। इकहरा बदन, गोरा रंग, आँखो पर चश्मा और थोडे उभरे हुए दांत। उसने प्रिंटवाला हल्का हरा सूट पहना हुआ था। वह मुस्कराते हुए बोली, "मैं पिछले छह महीनों से ही नौकरी कर रही हूँ। मैंने पिछले वर्ष अंग्रेजी से एम. ए. किया। बस नौकरी लग गई। सर, आप क्या करते हैं?" " मैं प्रोफेसर हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"कहाँ" उसने पूछा। मैंने पर्स से अपना विज़िटिंग कार्ड निकालकर उसे पकड़ाया।

"मैं भी पी.एच.ड़ी करना चाहती थी। पर नौकरी मिलने पर पढ़ाई छूट गई"

इधर-उधर की बात करते हुए मैंने कौन्सलिंग के क्षेत्र में अपनी रुचि का ज़िकर किया। उसने पूछा, "क्या आप अस्ट्रॉलजी पर विश्वास करते हैं?"

मैंने कहा, "नहीं। इस क्षेत्र में मेरी रुचि नहीं है। हाँ, बचपन में हाथ देखने का शौक था। और अब चेहरा पढ़ने का।"

"मेरा चेहरा देखकर मेरे बारे में बता सकते हैं?"

"क्यों नहीं। आप स्वभाव से बड़ी सीधी-सादी हैं। किसी का भी विश्वास

आसानी से जीत सकती हैं। हाँ, कभी-कभी फैसले जलदबाज़ी में करती है।"

मैं पता नहीं क्या-क्या बोलता रहा। वह ध्यान देकर सुन रही थी। उसी समय एक स्टेशन पर गाड़ी रुक गई। वह बोली, "स्टेशन से चलने पर मैं आप से कुछ बात करना चाहती हूँ।" कॉफी वाला अंदर आया। हमने कॉफी पी। ट्रेन चली। सामने से उठकर वह मेरी बगल में बैठ गई। मैं उसकी बात सुनने के लिए उत्सुक था। वह गंभीर होकर बोली, "में एक गहरी समस्या में उलझी हूँ। आप मेरी मदद करेंगे?"

"देखिए, मुझे पता नहीं कि मैं क्या मदद कर सकता हूँ। हाँ, अपनी समस्या के बारे में किसी दूसरे से चर्चा करना ठीक रहता है। कभी-कभी इससे समस्या सुलझाने में मदद मिलती है।"

"समस्या इस प्रकार है। मैं जिस ऑफिस में काम करती हूँ, वहाँ मेरा परिचय राकेश नामक एक लड़के से हुआ। वह राजस्थान का है। शुरू-शुरू में वह बहुत शर्मीला था। वह बहुत कम बात करता था। धीरे-धीरे हमारा सम्पर्क बढ़ा। मैं ऑफिस में नई-नई आई थी। उसने काम समझाने का ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया। पहले कुछ दिनों सिर्फ काम के बारे में थोड़ी बात होती रही। बाद में काम की बातें कम और इधर उधर की बातें अधिक होती रहीं। पहले वह रोज़ मेरे कमरे में आकर मेरे पास आधा घण्टा बैठता, फिर बाद में उसका मेंरे कमेरे में आना जाना बढ़ता गया। हम दोनों का मेल मिलाप ऑफिस में अब आम चर्चा का विषय बनने लगा। उसने मुझे अपने परिवार के बारे मे बताया और मैंने उसे अपने बारे में। हम एक दूसरे को दिल से चाहने लगे।

एक दिन मैंने उससे कहा, 'मेरे घरवाले मेरा विवाह जल्दी करना चाहते हैं। तुम्हारा क्या इरादा है?' वह बोला, 'अच्छी बात है। माता-पिता जी से मेरे बारे में कहो। मेरे माता-पिता एकदम मान जाएंगे।'

'मैं अपने माता-पिता से बात कैसे करूँगी। तुम ही कर लो।' मैंने कहा।

'अच्छा मैं तुम्हारे घर आ जाऊँगा' वह बोला।

कुछ दिन बीत गए। मेरी माँ ने एक दिन कहा, 'हमारी जात बिरादरी का एक लड़का है। पढ़ा-लिखा है। एक प्राइवेट कम्पनी में अच्छी नौकरी करता है।

वह तुम्हें कल देखने आएगा।' माँ की बात सुनकर मैं एकदम चौंक गई। मैंने कहा, 'पर मम्मी, मेरे ऑफिस में एक लड़का है। वह मेरे साथ विवाह करना चाहता है। हम एक दूसरे को चाहते हैं।....'

मेरी माँ बोली, 'देखो सीमा तुमने पहले क्यों नही बताया। यह लड़का कल आयेगा। देख लेना। यदि तुम्हें पसंद न हो तो जबर्दस्ती थोड़े ही हाँ कहनी है। तुम्हारे मामाजी ने लड़के को देखा है। बड़ी तारीफ कर रहे थे। तुम्हारे ऑफिस वाले लड़के को हमने देखा नहीं है। पता नहीं वह कैसा हैं। उसके घर वाले कैसे हैं। फिर यह केवल तुम्हारी मर्ज़ी पर निर्भर करता है'।

खैर, मै लड़का देखने भर के लिए तैयार हुई।

दूसरे दिन राजेश घर आया। काफी देर इधर-उधर की बातें हुईं। देखने में अच्छा लगा। हंसमुख होने के अलावा उसके बात करने का ढ़ंग आकर्षक था। उसने मुझे पसंद किया।

मेरी माँ बोली, 'राजेश को तुम पसंद हो। अब तुम्हें अपनी राय देनी है।' दो तीन दिन मैं बात टालती रही। मैं राकेश से बात करना चाहती थी। वह छुट्टी पर था। जब वह ऑफिस आया, मैने राजेश के बारे में बात की। उसके चेहरे का रंग एकदम बदल गया। उसने कहा, 'मैं घर गया था और मैंने तुम्हारे बारे में अपने माता-पिता जी से बात की है। वे शादी के लिए तैयार हैं और तुम...!'

इधर घर पर मेरे सभी सगे-संबंधी राजेश को पसंद कर चुके थे। वे बार-बार उसकी बढ़ाई करते रहे। उसकी नौकरी अच्छी है। वेतन अच्छा है। वह तरक्की करेगा। उसका मिज़ाज खुशनुमा है.... आदि आदि। मैं दुविधा में पड़ गई। मन में विचार आते रहे, इसमें शक नहीं कि राजेश बुरा नहीं है.... नौकरी अच्छी है। स्वभाव अच्छा है। हँसमुख है। मिलनसार है। पर राकेश...।

अपरोक्ष रूप में मेरे माता-पिता और अन्य सगे-संबंधियों का दबाव मेरे ऊपर बढ़ता रहा। इस बीच राजेश ने दो-तीन बार टेलिफोन पर मुझसे बात भी की। बार-बार पूछते रहे, 'मैं आपका फैसला जानना चाहता हूँ।' में कई दिन

तक आनाकानी करती रही। फिर एक दिन मैंने राकेश से कह दिया, 'राकेश, मैं मजबूर हूँ। मेरे घर वाले मुझपर दबाव डाल रहे हैं। वे राजेश को पसंद करते है। राकेश समझ गया और वह चुपचाप मेरे कमरे से बाहर चला गया। दूसरे रोज़ उसने पंद्रह दिन की छुट्टी का आवेदन पत्र भेजा।

मैंने राजेश से शादी करने की हाँ कर दी। परसों हमारी सगाई हुई। विवाह की तिथि निश्चित हुई। चार महीनों के बाद विवाह होगा। मैं दिल्ली लौट रही हूँ। मेरी घबराहट बढ़ गई है। मुझे यह पता नहीं कि मेरा फैसला सही है कि गलत।

जब भी मैं अपने मंगेतर राजेश के बारे में सोचती हूँ तो तुरंत राकेश की सूरत मेरे ज़हन में आती है। मैं राकेश को एक पल भूल नहीं सकती। मैं भली-भांति जानती हूँ कि राकेश को देखते ही मै रो पड़ूँगी। मुझे अपने ऊपर काबू नहीं रहेगा। राजेश को मैं कुछ ही दिनों से जानती हूँ। पर राकेश को पिछले छः महीनों से। उसे मैं बहुत कोशिश करने के बाद भी भूल नहीं सकती।

कल ही मैंने अपनी बचपन की सहेली को अपनी सारी व्यथा सुनाई। उसकी सलाह थी कि मुझे राकेश को एकदम भूल जाना चाहिए और राजेश के बारे में ही सोचना चाहिए। वह बार-बार कहती रही, 'तुम्हारा राकेश से सम्बंध ही क्या रहा है। ऑफिस में थोड़ा बहुत मेलजोल। इतनी सी बात के लिए तुम्हें परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। मेरी सहेली के लिए बस यह इतनी सी बात है, पर मेरे लिए....।"

सीमा यह सब कह रही थी। मैंने देखा उसकी आँखें आँसुओं से भर गई थीं।

साँप

वे एक दूसरे को थोड़ी दिनों से जानते थे। रमा किसी शोध कार्य के सिलसिले में रमेश के संस्थान में आई थी। पहले पहले शोध के बारे में बातचीत होती रही बाद में बाकी बातें भी। दोनों में जितना सम्पर्क बढ़ा, उतनी ही एक दूसरे के साथ नोक झोंक भी होती रही।

किसी भी बात में दोनों एक दूसरे से बातों में हारना नहीं चाहते थे। आज रमेश ने रमा को अपने घर डिनर पर आमंत्रित किया था। डिनर के बाद दोनों सैर कर रहे थे। इधर-उधर की बातें चल रही थी। रमा को एमदम कुछ याद आया। उसने किसी से सुना था कि रमेश के घर के लॉन में एक साँप निकला था। वह बोली,

"हाँ, लोग तो आस्तीन में साँप पालते हैं। सुना है कि आप अपने लॉन में भी पालते हैं।"

"ठीक सुना है। अपने घर पालता ही नहीं, खाना खिलाकर साथ-साथ सैर भी कराता हूँ"।

सलाह

उसे मीना के कटे बालों पर लगा बड़ा क्लिप अच्छा नहीं लगता था। एक बार बड़ी हिचकिचाट के बाद उसने मीना से कहा,

"आप अपने सुन्दर बालों पर यह क्लिप क्यों लगाती हैं? ये खुले अच्छे लगेंगे।"

"देखिए मिस्टर, यह मेरा निजी मामला है। मैंने किसी की सलाह नहीं मांगी।"

वह एकदम चुप रहा। करता क्या? दूसरे दिन मीना के बालों में क्लिप नही था।

सुख

मुझे आगरा जाना था और उसे गाज़ियाबाद। हम दोनों साथ-साथ बस स्टैन्ड के लिय चले। मैंने स्कूटर ले लिया और हम दोनों उसमें बैठ गये। बस स्टैन्ड पहुँचकर हम दोनों पहले उस स्थान पर गए जहाँ से गाज़ियाबाद के लिए बसें जाती थी। मैं तुरंत काउंटर पर गया और उसके लिए बस का टिकट खरीद कर ले आया। उसे बस में बिठाया और टिकट दे दिया। कुछ देर वह चुप रही। फिर एकदम बोली,

"मै दिल्ली से गाज़ियाबाद बहुत जाती हूँ... हमेशा बस से ही। पहली बार किसी ने मुझे बस में बिठाया है और टिकट खरीद कर दिया है। पहली बार आपने एहसास दिलाया कि दूसरे पर निर्भर रहने में कितना सुख है।" बस के चलने का समय हुआ। मैं बस से उतर कर खिड़की के पास खड़ा हुआ। मैं यह देखकर हैरान हुआ कि उसकी आँखों में आँसू थे।

मतलब

उसको देखते ही वह खुशी से खिल उठी। दरवाज़े तक आकर "जीजाजी, जीजाजी" कहते हुए उससे लिपट गई। उसे हैरानी हुई। वह उसे दो महीने पहले पहली बार मिला था। वह उसकी पत्नी की एक नई छात्रा थी, पर उसे "जीजी जीजी" नाम से पुकारने लगी थी।

उसका रंग रूप हंसमुख चेहरा, बड़ी बड़ी नशीली आँखें सहज ही किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सकती थीं।

वह हंसते हुए इधर-उधर की बातें करने लगी। उसने मुस्कराते हुए कहा,

"साली बन गई हो। यह रिश्ता बड़ा नाज़ुक है। इसका मतलब जानती हो?

"क्यों नहीं?"

"क्या मतलब है?"

"हाथ वाथ पकड़ सकते हैं और क्या?"

रिश्ता

संस्थान के परिसर में एक छोटा सा अतिथि गृह था दो कमरों का। खाने-पीने की कोई व्यवस्था न थी। सायं को मैं बाहर से ही खाना खाकर आया था। चौधरी जी ने कहा कि सवेरे वे चाय भेज देंगे और नाश्ता भी उनके साथ ही होगा।

चौधरी जी का घर बिल्कुल करीब था। सवेरे सात बजे मैं स्वयं ही चौधरी जी के घर गया। घंटी बजाई। किसी लड़की ने पर्दा हटाकर खिड़की से देखा फिर झट से मुस्कराते हुए दरवाज़ा खोला। बैठने के लिए इशारा किया। मैं सोफे पर बैठा। वह दूसरे कमरे में चली गई और चौधरी जी को भेजा। थोड़ी देर के बाद वह चाय की ट्रे ले आई। एक प्याली मेरी और बढ़ाई और दूसरी चौधरी जी की ओर। उसकी आयु कोई अठारह बीस वर्ष की रही होगी। गोल गोल चेहरा और नाक नक्शा तीखा था। चेहरे पर मासूमियत होने के बावजूद आंखो में शरारत की एक हल्की लहर सी थी। उसके बारे में जानने के लिए उत्सुकता हुई। कौन है यह? मैने पहले चौधरी जी के घर उसे कभी नहीं देखा था।

दूसरे दिन जब मैं खाने की मेज़ पर बैठा तो वह खाना ले आई। आज मैने चौधरी जी से धीरे से पूछा, "यह कौन है? आपने इसका परिचय नहीं दिया।"

वे धीरे से बोले, "इसका कोई नहीं है। हमारे घर दो साल से है। यही घर का सारा कामकाज करती है।" वह जब दुबारा सब्ज़ी लेकर आई अबकी बार उसका चेहरा अधिक आकर्षित लगा। मैं उसे गौर से देखना चाहता था पर वह टेबिल पर सब्ज़ी का डोना रखकर तुरंत किचन में चली गई। चौधरी जी बोले,

"कंचन बड़ी सीधी सादी लड़की है। गाँव में स्कूल गई है। मेरी पत्नी अपने मैके गई थी। वहाँ उससे भेंट हुई। वही से उसे अपने साथ यहाँ ले आई। उसने यहाँ का सारा कामकाज सीख लिया है। खाना बनाती है, कपड़े धोती है और बच्चों का ख्याल रखती है। हम दोनों इसे बहुत चाहते हैं।"

दूसरे दिन सवेरे मेरे कमरे के दरवाज़े पर हल्की दस्तक हुई। मेरी नींद खुल गई और मैंने आंखे मलते-मलते दरवाज़ा खोला। आश्चर्य हुआ। कंचन चाय की ट्रे लेकर सामने खड़ी थी। मैने कहा "अरे, आप यहाँ क्यों आईं? मैं खुद आता" वह मुस्कराते हुए बोली, "बाबूजी ने कहा...."। उसने ट्रे टेबिल पर रखी और फ्लास्क खोलने लगी। मैं टूथब्रश करने बाथरूम में गया। जब वापिस आया तो देखा कि उसने मेरा बिस्तरा ठीक किया था। उसने कम्बल लपेट कर रखा था

और चादर बिछाई थी। उसने तुरंत फ्लास्क से कप में चाय उंडेली और चाय की प्याली मेरी और बढ़ाई। उसने पूछा,

"बाबूजी पूछते हैं कोई काम...?"

"नहीं तो...। हाँ, कुछ कपड़े प्रेस कराने हैं... मगर....."

"दे दीजिए। में कराके लाती हूँ। बाबूजी के भी करने हैं।"

मैंने सूटकेस से दो कमीज़ें और पैंट निकालकर दी। वह कपड़े लेकर चुपचाप चली गई।

सायं को जब मैं जाने की तैयारी कर रहा था वह कपड़े लेकर कमरे में आई। कपड़े टेबिल पर रखते हुए बोली।

"अच्छा साहब, आप जा रहे हैं?"

"हाँ, शाम की फ्लाइट है।"

"दुबारा कब आएंगे?"

"पता नहीं। क्यों पूछ रही हो?"

"बाबूजी मुझे गांव भेज रहे हैं।"

"क्यों? यहाँ तुम खुश नहीं हो क्या?"

"खुश हूँ। कहते हैं कि मेरे मामाजी ने बुलाया है।"

"तेरे मामाजी? उनको क्या पड़ी?

"कोई बात है....।" उसके चेहरे पर परेशानी झलक रही थी। "क्या आप बाबूजी को समझा लेंगे ताकि गाँव न भेजें। मैं यहीं रहना चाहती हूँ।" मैंने देखा उसकी आंखे आंसुओं से भर आई थीं। मेरे कुछ कहने से पहले ही वह दुपट्टे से आंसू पोंछते हुए एकदम चली गई।

थोड़ी देर के बाद चौधरी जी मुझे हवाई अड्डा छोड़ने आए। मैंने कंचन के बारे में बात की और पूछा,

"क्यों उसे गाँव भेज रहे हैं जब वह जाना नहीं चाहती?"

"उसके मामा ने इसका रिश्ता पक्का किया है।"

"आप कहते थे इसका कोई नहीं है।"

"एक दूर का मामा है। वह कल आया। हम खुद इसको नहीं भेजना चाहते थे। हम इसका विवाह भी समय पर कराने की सोच रहे थे, पर वह माना नहीं। हम रिश्ते के बीच में क्या बोल सकते? आखिर वह इसका मामा है, दूर का ही सही। हमारे साथ इसका क्या रिश्ता है...?"

सहानुभूति

धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, पढ़ने-लिखने के लिए इनके पास समय नहीं है। उनके कमरे में दो तीन शीशे की अलमारियों में किताबें सजी ज़रूर हैं। उनके टेबिल के एक कोने में उनके पी०एच०डी० का अप्रकाशित शोध-प्रबंध हमेशा पड़ा रहता है। कभी कभी इसके पन्ने भी पलटते रहते हैं। शोध प्रबंध लिखने के अलावा शायद ही कोई अन्य शोध कार्य किया है।

प्रोफेसर होने के बावजूद उन्हें पढ़ाने के लिए न तैयारी करने का समय मिलता है और न शायद इसे वे आवश्यक ही समझते हैं। यदि कोई समस्या है तो बस इतनी कि प्रशिक्षणार्थी इनके पढ़ाने से बिलकुल संतुष्ट नहीं हैं। वर्षों से वे अपने गोपनीय फीडबैक फार्मों में यहाँ तक लिखते आए हैं, "इन्हें क्यों पढ़ाने के लिए रखा गया है? इन्हें नौकरी से निकाला जाना चाहिए, आदि।" खैर, सरकारी नौकरी पक्की है। किसी को नौकरी से कैसे निकाला जा सकता है।

आज सायं को अत्यंत आवश्यक कार्य से मुझे उनके घर जाना पड़ा। दरवाज़े की घण्टी बजाई। भीतर से ढोलक बजने और गाने की आवाज़ आ रही थी। दरवाज़ा काफी देर किसी ने नहीं खोला। हल्का धक्का देकर मैंने दरवाज़ा खोला देखा प्रोफेसर साहब कच्छा बनियान पहने ज़ोर ज़ोर से ढोलक पीट रहे थे और उनकी पत्नी हारमोनियम बजा रही थी। पति-पत्नी कीर्तन में मस्त थे। आंख के इशारे से मुझे बैठने को कहा।

उन्हें इस हालत में देखकर अनायास मुझे उनपर तरस आया। मेरे मन में प्रशिक्षणर्थियों के प्रति साहनुभूति पैदा हुई।

समय

उसे देखते ही किसी फिल्मी गीत की पंक्ति 'कभी नज़र मिलाए कभी नज़र चुराए' याद आती है। बात करते हुए वह आकर्षक अंदाज़ में नज़रें मिलाती है और चुराती है।

आज वह गेस्ट हाऊस में मेरे कमरे के सामने से गुज़री। मैंने उसे भीतर आने के लिए कहा। वह भीतर आई और सोफे पर बैठी। वह रहनेवाली दिल्ली की है। हाल ही में उसकी नियुक्ति इस संस्थान में किसी परियोजना में हुई है। मैंने चाय मंगाई। वह चाय बनाने लगी। मैंने योंही पूछा, "यहाँ कैसा लगता है?"

"ठीक है, पर कभी-कभी बोरियत भी होती है" वह बोली।

"क्यों, ऐसी क्या बात है?"

वह नज़रें उठाकर बोली, "यहाँ सब अपने-अपने कार्य में इतने व्यस्त हैं कि किसी को किसी के लिए समय ही नहीं।"

"समय? मुझे यह मालूम न था कि इतनी सुन्दर लड़कियों को भी किसी के समय का मोहताज़ रहना पड़ता है।" मैने मुस्कराते हुए कहा।

वह तुरंत बोली, "यहां भी बातचीत में समय ही बीतता जा रहा है। क्या फायदा?'

मेरी समझ में उसका तर्क नहीं आया।

भाषा

निशा से मेरी मुलाकात उसी गेस्ट हाऊस में पिछले महीने हुई थी। वह भारतीय मूल की अमरीकी नागरिक है। हाल ही में तीन महीने के लिए शोध कार्य करने के सिलसिले में भारत आई है। वह हिन्दी सीखना चाहती थी। मैंने अपने एक स्थानीय मित्र से परिचय काराया। उसने हिन्दी सीखना प्रांरभ किया।

अबकी बार मिली तो वह हिन्दी में बात करने लगी, "मेरा नाम निशा है। मैं हिन्दी सीख रही हूँ.....।" वह बोलती रही। मुझे अच्छा लगा। मैंने कहा, "बहुत अच्छा। तुम तो हिन्दी बहुत अच्छी सीख गई हो। तुम्हारा भारत में क्या कार्यक्रम है?

"हिन्दी में बता नहीं सकती", वह तुरंत बोली। दरअसल वह कई वाक्य रट चुकी थी... पर अपने प्रोग्राम के बारे में न बोल पाई। अंग्रज़ी में बोली। मैंने उसे कुछ दिन के लिए मैसूर आने का निमंत्रण दिया। वह बोली, "क्या वहाँ भी हिन्दी में बोलना होगा?"

"ज़रूरी नहीं। वहाँ कन्नड़ से काम चलेगा" मैंने कहा।

"कोई बात नहीं। फिर मैं कन्नड़ सीखना शुरू करूँगी।" वह हंसते हुए बोली।

छूट

किसी ट्रेनिंग कोर्स में भाग लेने के लिए वह सिडनी में था। एक शाम को वह किंग्स क्रास के फैशनेबल शापिंग सेंटर में घूम रहा था। चारों और खूब रौनक थी। एक सुन्दर मॉड युवती ने नज़दीक आकर कहा,

"हैलो डार्लिंग!"

"हैलो!" उसने आगे बढ़कर युवती की कमर में हाथ डालकर पूछा,

"कितने पैसे?"

"बीस डॉलर" युवती ने जवाब दिया।

"विद्यार्थी के लिए कोई छूट है?" उसने पूछा।

मौत

शाम को मैं युनिवर्सिटी कैम्पस में घूम रहा था। एकदम लीना से सामना हो गया। हम दोनों फ्रेंच क्लास में साथ थे। उसके मेकअप और फार्मल पोशाक को देखकर मैंने मुस्कराते हुए पूछा,

"आज किसकी मौत आई है?"

"मरना चाहते हो?" उसने पूछा।

"मेरी इतनी किस्मत ही कहाँ कि तुम्हारे हाथों...." मैने एक लंबी सांस खींचकर उत्तर दिया।

इस पर एक हवाई चुम्बन देकर वह आगे बढ़ी।

गुरुदेव

"मैं गुरूदेव बोल रहा हूँ।"

"कौन गुरुदेव?"

"मेरा असली नाम सुरेश मिश्र है। मैं आपके पतिदेव से बेंगलूर में मिला हूँ। उन्होंने ही दिल्ली में मिलने को कहा है।"

श्रीमती शर्मा समझ गई। वे लंच पर आने के लिए मान गए। श्रीमती शर्मा ने खाना बनाने की तैयारी की। थोड़ी देर बाद, सफेद धोती और लम्बा कुर्ता पहनकर वे दरवाज़े पर खड़े थे। श्रीमती शर्मा ने आदर से बिठाया। शर्मा जी को उन्होंने आफिस में टेलिफोन किया था पर वे अभी तक घर नहीं पहुँचे। गुरुदेव बोले, "मुझे आपके पतिदेव ने कहा है कि आप की तबीयत ठीक नहीं रहती। इसी लिए मैं आया हूँ। आप अपनी बीमारी के बारे में बताइए।" श्रीमती शर्मा उन्हें चाय दे कर सामने बैठी और अपनी बीमारी के बारे में बोली। वे एक कागज़ पर कुछ लिखते रहे। बीच बीच में कुछ मंत्र गुनगुनाते रहे।

इतने में शर्मा जी आए। गुरुदेव उनसे बोले, "मैने सभी बातें नोट की हैं। मैं इन्हें बिलकुल ठीक कर सकता हूँ। हाँ, विधिवत गुरुदेव मानना पड़ेगा। मुझसे दीक्षा लेनी होगी। कई एम.पी., एम.एल.ए. एवं मिनिस्टर मुझे अपना गुरुदेव मानते है। मैंने कइयों का कल्याण किया है।

इतने में खना खाने का समय हुआ। श्रीमती शर्मा ने खाना टेबिल पर लगाया। शर्माजी ने अभी अन्नदेवता को प्रणाम भी नहीं किया था, गुरुदेव खाने पर टूट पड़े। वह कहने लगे, "मैं सत्रह दिन से उपवास कर रहा हूँ। मैं ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी के हाथ का बना खाना नहीं खाता।"

"क्या आपके चेले सभी ब्राह्मण हैं?" "नहीं तो, मेरे चेले सभी धर्मों और जातियों के हैं। हाँ, अन्य धर्मों एवं जातियों के चेलों को मैं दूर से ही आशीर्वाद देता हूँ।"

"मैं आपके विधिवत निमंत्रण की प्रतीक्षा करूँगा।" यह कहकर गुरुदेव ने प्रस्थान किया।

श्रद्धांजलि

कार्ड पढ़कर मुझे अफसोस हुआ। डॉ० ग्रेवाल नही रहें। उनकी आत्मा की शांति के लिए शोक सभा रखी गई थी। जिसमें कीतर्न और पाठ के अतिरिक्त श्रद्धांजलि पेश करने के भाषण भी होने थे।

यह शोक सभा उसी संस्था की ओर से आयोजित हो रही थी, जिसके साथ डॉ० ग्रेवाल कई वर्ष सम्बद्ध रहे थे। धर्म और साहित्य में शोध के बारे में अपने समय के एक प्रसिद्ध साहित्यकार और धर्म के विशेषज्ञ विद्वान ने यह संस्था प्रांरभ की थी। डॉ० ग्रेवाल ने युनिवर्सिटी में आने से पहले इसी संस्था में कुछ वर्ष कार्य किया था। जब यूनिवर्सिटी से अवकाश प्राप्त किया तो दुबारा इसी संस्था में कार्य करने लगे।

डॉ० ग्रेवाल की नियुक्ति जब युनिवर्सिटी में धर्म और साहित्य से संबंधित विभाग में हुई तो कई चर्चाएं हुई। शायद इस लिए कि वे अपनी वेष-भूषा, रहन सहन के ढंग और व्यवहार से बिल्कुल अलग थे। बदन पर सफेद खादी का कुर्ता-पाजामा सिर पर सफेद पगड़ी, पांव में चप्पल पहनते थे। सर्दियों में एक खादी का वासकेट पहनते और लोई नुमा शाल लपेटते थे। उनकी बात करने का लहजा अलग था। वे ज़ोर ज़ोर से हंसते थे। बात करते हुए अकसर दूसरे की बांह पकड़ते थे या पीठ छूते थे। घर पर भी सीधे-सादे ढंग से रहते थे।

बातें वे किसी भी विषय पर कर सकते थे। धर्म और साहित्य से लेकर आज के फैशन तक। वे युनिवर्सिटी कैम्पस में रहते थे और सानुरोध लोगों को अपने घर बुलाते थे। वे दो कमरों के फ्लैट में अकेले रहते थे। घर में दो तीन कुर्सियां थीं। और खना बनाने के लिए किसी लड़की को रखा था जो सुबह और शाम काम करती थी। जब कोई मेहमान आता तो उसके लिए चाय-नाश्ता बनाती थी।

जितना डॉ० ग्रेवाल के मित्रों का दायरा दिन-प्रतिदिन बढता रहा उतना ही उनके दुश्मनों का भी। उनके मित्रों के घेरे में शामिल हुए दो ऐसे वरिष्ठ प्रोफेसर जो अपने विषयों में जितने माहिर थे उतने ही सनकी भी। उनकी और किसी से नहीं बनती थी। लोग हैरान थे कि वे दोनों डॉ० ग्रेवाल के करीब कैसे आए।

डॉ० ग्रेवाल में ऐसा क्या था कि वे जल्दी दोस्त भी बनाते थे और दोस्तों

के साथ साथ दुश्मन भी। यह राज़ किसी की समझ में नहीं आता था। एक बात ज़रूर थी कि वे विद्ववानों का आदर करते थे और उनकी खुले दिल प्रशंसा करते थे।

युनिवर्सिटी में रहते हुए वे अपनी शोध परियोजना पर कार्य करते रहे। उनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। उनके लेखन कार्य से कुछ लोग असंतुष्ट थे और कई कटु आलोचक।

मेरे साथ उनका अधिक उठना-बैठना न था। हॉं, जब भी मिलते तो बड़े प्यार से। उनके निजी परिवार के बारे में बस इतना मालूम था कि उनका एक बेटा विदेश में था और उनकी पत्नी गाँव में रहती थी। एक बार वे बीमार पड़े, अस्पताल में उन्हें दाखिल कराना पड़ा तो उनकी पत्नी ही अस्पताल में उनके साथ रही। ठीक होने पर वे फिर से अकेले रहने लगे।

इस शोक सभा में काफी लोग एकत्रित हुए थे। डॉ० ग्रेवाल की एक बड़ी फोटो सामने टेबल पर थी। उस पर फूलों की माला रखी गई थी। कीर्तन और पाठ हुआ। उनके सहयोगियों ने भाषण दिए। उनकी बहुत प्रशंसा हुई। किसी ने उन्हें सन्त का नाम दिया, किसी ने 'साधु' का, किसी ने उन्हें धर्म-साहित्य का उच्च कोटि का विद्वान कहा तो किसी ने उन्हें इन्सानियत का फरिश्ता कहा। उन्हें भाव-विभोर श्रद्धांजलि प्रस्तुत की गई। श्रद्धांजली प्रस्तुत करने में उनके वे सहयोगी भी शामिल थे जो जीते जी उनकी हमेशा आलोचना ही करते थे।

मैं सोच रहा था अगर ऐसी तारीफ वे कहीं आज सुनते तो खिलखिलाकर हंसते। शोक सभा अरदास के साथ ही समाप्त हुई। लोग उठकर शामियाने से बाहर चलने लगे। जाने से पहले वे डॉ० ग्रेवाल की फोटो की ओर हाथ जोड़ते। मैंने भी औरों की तरह हाथ जोड़े।

डॉ० ग्रेवाल का बेटा भी विदेश से आया था। वह सिर पर सफेद रूमाल बांधे द्वार पर हाथ जोड़े खड़ा था। मैंने भी हाथ जोड़े। मैने उसे पहली बार देखा था। वह सफेद कुर्ता पाजामा पहने था। उसकी शकल सूरत बहुत कुछ अपने पिता के साथ मिलती थी। उसके साथ ही एक कुर्सी पर उसकी माँ दुबकी सी बैठी थी। उसका चेहरा चुन्नी से आधा ढका था। वह हाथ जोड़े बुत जैसी बैठी थी। उसकी आँखें बंद थीं। वह किसी को पहचान नहीं रही थी।

वापसी

सारे गाँव में बात फैल गई कि रहमान पंजाब से लौटा है। एकदम अज़ीज़ मीर के आंगन में छोटे-बड़े सभी एकत्र हुए। बच्चों ने शोर मचाया। रहमान की माँ साजा बच्चों में शीरीन, छुहारे और बादाम बाँट रही थी। बड़े गर्म-गर्म काहवा पी रहे थे। रहमान एक-एक करके सबसे गले मिल रहा था या हाथ मिला रहा था। गाँव के बड़े बूढ़े उसे दुआएं दे रहे थे और उससे पंजाब के बारे में प्रश्न पूछ रहे थे। वह इन सभी प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दे रहा था। उसके माँ बाप बहुत प्रसन्न थे। रहमान पूरे दो वर्ष के बाद पंजाब से घर लौटा था। वह भी बहुत सारे संदेश, पत्र और तार भेजने के बाद।

रहमान को सारा वातावरण अजीब सा लग रहा था। जब वह घर से भाग गया था उसने फैसला किया था कि वह तब तक घर नहीं लौटेगा जब तक वह नसीम के साथ विवाह करने के लिए योग्य न बने। गुलज़ार अपनी बेटी का विवाह रहमान से नहीं करना चाहता था जब तक वह कोई अच्छी सी नौकरी नहीं कर ले। जब कश्मीर में बहुत दिनों तक उसे नौकरी नहीं मिली तो वह पंजाब गया। पहले पहले उसने काफी कठिनाइयों का सामना किया, बाद में उसे एक कारखाने में अच्छी नौकरी मिली।

रहमान के पिता अज़ीज़ मीर ने रहमान को घर लौटने के लिए कई सन्देश भेजे और पत्र लिखें पर कोई न कोई बहाना करके वह टालता रहा। अब रहमान के पिता ने उसे मजबूर होकर एक तार भेजा जिसमें लिखा था कि उसकी माँ सख्त बीमार है। रहमान तार मिलते ही घर लौटा।

घर पहुँचते ही उसे पता चला कि असल मैं उसकी माँ बीमार नहीं थी। यह केवल चाल थी उसे वापस बुलाने की। रहमान बहुत ही मायूस हुआ। आखिर ऐसा झूठ बोलने की क्या मजबूरी थी।

शाम हुई। गाँव के सारे रिश्तेदार और पड़ोसी अपने अपने घर लौटे। रहमान इसी की प्रतीक्षा कर रहा था। वह माँ से नसीम के बारे में पूछना चाहता था। मगर उसे साहस नहीं हो रहा था। माता पिता ने भी इसके बारे में कुछ नहीं कहा था।

रहमान अपने पिता के साथ खाना खाने लगा। माँ उसके सामने बैठकर उसे प्यार भरी नज़रों से देख रही थी और बात बात पर अपने को न्योछावर कर रही थी।

खाना खाने के बाद माँ उसे अपने कमरे में ले गई। कमरे का दरवाज़ा खोलकर वह हैरान हुआ। सामने नसीम थी। उसे देखकर वह पसीना-पसीना हुआ। वह हैरान हुआ नसीम वहां चुपचाप बैठी थी। नसीम को एकदम रोना आया। रहमान की माँ ने नसीम को अपनी छाती के साथ लगाकर उसे चुप कराया। माँ बोली, "बेटे, यह तुम्हारी अमानत है हमारे पास। इसके पिताजी ने इसे हमारे हवाले किया है।"

रहमान और भी हैरान हुआ। उसे यह सारा सपना सा लगा। रहमान की माँ बाली,

"गुलज़ार साहब पिछले सप्ताह स्वर्गवास हुए। उनकी आखिरी इच्छा थी नसीम का हाथ तुम्हारे हाथ मैं देने की। इसलिए हमें झूठा तार भेजना पड़ा। मगर अफसोस कि तुम्हारें यहाँ पहुँचने से पहले ही वे चल बसे। मरने से पहले उन्होंने नसीम को हमें सौंप दिया।

नसीम धीरे-धीरे रो रही थी। रहमान की आँखें भी आंसुओं से भर गईं। वह माँ के पास फर्श पर बैठा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि नसीम को कैसे चुप कराए।

धक्का

गिरीश कुछ सहयात्रियों से बोल रहा था बिना किसी हिचकिचाहट के। बातें वही। वह क्या करता है, कब से वह पोर्टबलेयर में है और उसे क्या क्या पसन्द है। नेवी की नौकरी में उसका सम्पर्क कई भाषा-भाषियों से हुआ है। इसलिए वह कई भाषाओं में गा भी सकता है। उसे सितार बजाना आता है। इस बीच उसके साथ वाली कुर्सी पर बैठी उसकी नव विवाहित पत्नी श्वेता बोर हो रही थी। वह बार बार गिरीश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश करती थी। बीच-बीच में वह अपना सिर उसके कन्धे पर रखती थी। पर ग्रिरीश पर कोई असर नहीं। वह अपनी ही धुन में दोहरा रहा था कि जब भी उसे फुर्सत मिलती है तो वह गाना गाता है। शादी हो जाने के तुरन्त बाद पिछले छः महीनों में उसको तीन जगह जाना पडा। कलकत्ता, मद्रास और अब पोर्टबलेयर। श्वेता की अवहेलना मुझसे देखी न गई। मैने बीच में ही पूछा,

"क्या आपकी पत्नी भी गाना गाती है?" श्वेता यह सुनकर कुछ चौंकी। गिरीश बोला,

"इसे गाने का शौक है। यह बाथरूम सिंगर है। हाँ, घर पर मेरे गाने बजाने में दिलचस्पी लेती है।"

यह सुनते ही श्वेता के चेहरे का रंग फिर से बदला। बोर होकर वह गिरीश का हाथ दबाने लगी। गिरीश अपनी ही बातों में मस्त था।"

जॉली बॉय द्वीप पर बोट रुकी। हम तीनों और कुछ लोगों के साथ छोटी बोट से किनारे तक जा रहे थे। छोटी बोट के बीच में बिछे शीशे से समुद्र के पानी के नीचे चमकते सुन्दर कोरेल और रंग-बिरंगी मछलियों के तैरने का दृश्य बहुत सुहावना था। श्वेता उत्सुक बच्चे की तरह इस दृश्य की ओर एकदम आकर्षित हुई। उसकी आंखों में एक चमक थी। समुद्र के नीचे एक बहुत ही आकर्षक रंगीन नज़ारा बिखरा पड़ा था। गिरीश भी पहली बार कुछ मिनट चुप रहा। बीच के पास ही पेड़ों के झुरमुट में बने पिकनिक स्पॉट पर हमने कब्ज़ा जमाया। श्वेता और गिरीश अलग किसी कोने में गए। खाना खाने के बाद जब

मैं समुद्र में नहाने के लिए उतरा, गिरीश और श्वेता किनारे के पास नज़र आए। गिरीश पानी में डुबकियां लगा रहा था और श्वेता भी किनारे के साथ-साथ ही पानी के बीच चल रही थी। उसकी कमीज़ शिलवार भीग गई थीं। वह एक शीशे का जार हाथ में लिए थी। जिसमें कोरेल के टुकड़े और सीप आदि जमा कर रही थी। गिरीश ने मुझे आवाज़ दी,

"ज़रा यह देखिए! मुझे क्या मिला?"

उसके हाथ में एक छोटी सी स्टार फिश थी। मैंने कहा, "ज़िन्दा है। इसे जार में डालिए।" जार का मुंह छोटा था। श्वेता भाग कर खुले ढक्कन वाला एक डिब्बा ले आई। स्टार फिश को उसमें डाला। कुछ कोरेल के टुकड़े, सीप की वस्तुएं हम पानी से इक्ट्ठा करते रहे और श्वेता उन्हें जार में डालती रही।

लौटने पर वे दोनों बोट में मेरे पास बैठे। गिरीश पास ही किसी अस्ट्रेलियन महिला टूरिस्ट से बात करने लगा। मैने श्वेता से धीरे-धीरे मुस्कराते हुए कहा,

"तुम्हें पति का खास ख्याल रखना पड़ेगा। यह दोस्त बनाने में माहिर है।"

"हाँ इसकी यही आदत है। बहुत बोलता है। मगर फिक्र की बात नहीं। कहाँ जा सकता है।" इस बीच गिरीश बोला,

"देखिए, कितना भरोसा है इसे मुझ पर। लव मैरिज जो की है।"

"लव मैरिज कैसे? आप दोनों कहाँ मिले?" मैंने पूछा।

"हम दोनों एक ही दफ्तर में थे। ट्रेनिंग के बाद मेरी पोस्टिंग बम्बई में हुई। श्वेता मेरे बॉस की स्टेनो थी। एक बार लिफ्ट में चढ़ते समय उसे मेरा हल्का सा धक्का लगा। वह नाराज़ हुई। उसने मेरे बॉस से शिकायत की। मेरे बॉस ने कहा 'गिरीश जान बूझ कर ऐसा नहीं कर सकता'! वह मानी नहीं। मेरे बॉस ने मुझसे ज़िकिर किया। मैं झेंप गया। सोचा, चलो माफी मांग लेते है। श्वेता को जब मैंने दूसरे दिन देखा, मैंने कहा, 'माफ करना, तुम्हें गलत फहमी हुई है।' वह कुछ बोली नहीं। कई दिनों तक हम दोनों में कोई बातचीत न हुई। एक दिन उसकी बड़ी बहन और श्वेता मुझे बाज़ार में मिले। मैं उनकी नज़र बचाकर निकलने लगा तो श्वेता ने मुझे आवाज़ दी और अपनी बड़ी बहन से मेरा परिचय

कराया। हम अब रोज़ मिलते रहे और साथ-साथ घूनने-फिरने लगे। एक वर्ष में हमारी शादी भी हुई।" गिरीश ने बात खत्म करते हुए कहा।

"अच्छा यह बताना, क्या तुमने जान बूझकर धक्का दिया था?" मैंने पूछा।

"हाँ, धक्का दिया था ज़रूर। मुझे यह पता नहीं था कि बात बिगड जाएगी।"

"बात बिगड़ी कहाँ?" श्वेता बीच में ही बोली, "बात तब बिगड़ेगी जो अब धक्का दोगे"। हम तीनों हंसे।

बोट वापस किनारे पहुँची। छः बज गए थे। अन्धेरा छा गया था। मैंने दोनों से विदा ली। दोनों ने मुझसे मिलने सर्किट हाऊस आने की बात कही।

कमी

वह मैरीन ड्राइव पर शाम की सैर करके चर्च गेट की ओर मुड़ गया। अपने ही कुछ ख्यालों में गुमसुम। फुटपाथ पर चलते हुए किसी ने धीरे से पूछा, "वॉट ए गर्ल। गुड़ गर्ल।" उसने बाईं ओर देखा। साधारण कमीज़-पैंट पहने दुबला-पतला आदमी था। ये उसी के शब्द थे। वह बड़ी आतुर दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। उसने ऐसा मरियल सा दलाल पहली बार देखा था। वह इस बात पर हैरान हुआ। ढेर सारी चिंताओं की छाप लिए एक अधेड़ उम्र का आदमी जिसके बाल पूरे पके हुए थे, शरीर ढीला-ढाला था, से उसे क्या अपेक्षा थी। क्या उसकी आँखों पर पट्टी बंधी है, जो वह जवान और अधेड़ उम्र वाले आदमी के बीच में फर्क नहीं कर सकता था। शायद अपने अभ्यास से उसे पक्का भरोसा था कि वह गलत नहीं है। उसने एक सही खरीदार को पहचाना है।

खैर कोई उत्तर दिए बिना वह आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाकर मुड़कर देखा तो वह आदमी कहीं भी नहीं था। उसने आराम की सांस ली।

दूसरे दिन सायं को वह होटल के कमरे में था तो दरवाज़े पर दस्तक हुई। उसने दरवाज़ा खोला तो एक तीस-पैंतीस वर्ष की औरत सामने खड़ी थी। उसे देखते ही औरत मुस्कराई। उसने पूछा,

"क्या बात है? आप कौन हैं?"

"मुझे होटल के मैनेजर साहब ने भेजा है"। यह कहते हुए वह दरवाज़े के भीतर आई।

"पर क्यों? मैंने तो किसी से नहीं कहा था।" वह घबड़ाते हुए बोला।

"वाह! मुझे क्या मालूम फिर क्या ये बातें कही जाती हैं? होटल वाले स्वयं ही समझते हैं किसे क्या चाहिए।" वह एक स्वर में बिना हिचकिचाहट के बोली। उसने कुछ नहीं कहा। दरवाज़ा खुला छोड़कर वह नीचे आया। स्वागत के कांउटर के पास वही मरियल सा दलाल होटल के किसी कर्मचारी के साथ बात कर रहा था। उसने पूछा,

''मैनेजर कहां है?''

''मैनेजर, क्यों क्या बात है साहब? लड़की पसंद नहीं है क्या?'' होटल का कर्मचारी बिना किसी झिझक के बोला।

''मैं होटल छोड़ रहा हूँ।'' वह ऊँची आवाज़ में बोला।

''आखिर क्यों? आप कल ही तो आए हैं। यहाँ किस बात की कमी है?''

''कमी नहीं है। बस इसीलिए।'' उसके स्वर में कड़ुवाहट थी।

नौकरी

संस्थान में उससे मिलिए। एक बुझा-बुझा चेहरा, धीमी आवाज़, नस-नस में निराशा ही निराशा भरी हुई है। उसने कोई भी मामूल से अधिक काम न करने का इरादा किया है। उसका मतलब है। कक्षा में जाना (समय पर कभी नहीं)। निश्चित पाठ पढ़ाना। इधर-उधर की बातों से पहरेज़ करना...। विद्यार्थियों की उससे कोई भी शिकायत नहीं है। वह देर से ही कक्षा में नहीं जाता, बल्कि जल्दी कक्षा छोड़ भी देता है। दफ्तर में वह बिना बुलाए न प्राचार्य से मिलने जाता है और न अन्य सहाध्यापकों या सहकर्मियों से।

हाँ, ज्यों ही मौका मिले, तो अपना काम करके वह संस्थान से खिसक जाता है। समय से पहले दफ्तर से चले जाने के लिए न वह किसी से इजाज़त लेता है और न ही किसी को सूचित करता है। अधिकारी लोग जानकर भी अनजाने बने रहते हैं। कई बार उन्हें इसके लिए झूठ भी बोलना पड़ता है।

उसका एक दूसरा रूप भी है। बहुत ही अलग। यह रूप कार्यालय के बाहर का है। वह अपनी पत्नी द्वारा संचालित कारोबार में उसका हाथ बंटाता है। हाथ क्या बटाता है, लगभग सारा कार्य यही देखता है। उसकी पत्नी का कारोबार रैडीमेड गार्मेंटस से सम्बंधित है। उसने कई दर्ज़ी रखे हुए है। आर्डर के मुताबिक कपड़े सिलवाते हैं और उन्हें बाज़ार में सप्लाई करते हैं। इस कारोबार से अच्छी-खासी आय होती है।

किसी ने पूछा, "तुम नौकरी से अवकाश ग्रहण करके क्यों नहीं सारा समय अपने कारोबार में लगाते हो?" उसका जवाब सीधा और साफ था, "देखिए, नौकरी मेरी सरकारी है और कारोबार मेरी पत्नी का। मैं सरकारी नौकरी छोड़कर पत्नी की नौकरी भला क्यों करूँ?"

प्रायश्चित

इस छोटे से कस्बे के एक ऐतिहासिक मन्दिर में अबकी बार बाहर से आए किसी महात्मा ने यज्ञ कराया था। दूर-दूर से श्रद्धालु आए थे। सभी महात्मा जी के दर्शन करते थे और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे।

महात्मा जी को देखकर हीमाल एकदम ठिठक गई। महात्माजी के सिर पर सफेद बाल थे और दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उन्होंने सफेद खादी का कुर्ता-पाजामा पहना हुआ था। उन्होंने हीमाल को देखते ही पहचाना। दोनों ने एक-दूसरे को लगभग तीस बरस के बाद देखा होगा। हीमाल क्षण भर के लिए रुककर आगे बढ़ी। महात्मा जी भी कुछ नहीं बोले। हीमाल यज्ञ के प्रसाद की प्रतीक्षा किए बिना ही मन्दिर से निकल कर अपने घर लौटी।

घर पहुँचकर हीमाल को बिल्कुल चैन न आया। वह दुबारा मन्दिर जाकर उसे देखना चाहती थी। उसकी कुशल-क्षेम पूछना चाहती थी। पर उसकी हिम्मत न हुई। वह बिना कुछ खाए-पिए बिस्तर पर लेटी। उसे नींद नहीं आ रही थी।

इतने वर्ष कितनी जल्दी बीत गए थे। वह अठारह वर्ष की उम्र की ही थी जब उसकी बड़ी बहन उसे अपने मैके से ससुराल ले गई। उसकी मां बहुत गरीब थी। उसे हीमाल की शादी की चिन्ता थी। पर उसे कोई योगय वर नहीं मिल रहा था। हीमाल की बड़ी बहन ने एक वर ढूंढा, गोपीनाथ। पर वह गरीब होने की वजह से माँ को पसन्द न आया। बड़ी बहन ने अपनी माँ की मर्ज़ी के खिलाफ मजबूर होकर हीमाल और गोपीनाथ की किसी मंदिर में चोरी छिपे शादी करा दी। इस विवाह में गोपीनाथ के कुछ रिश्तेदार शामिल हुए।

कुछ दिन बीत गए। हीमाल की माँ को पता चला। वह विवश होकर चुप रही। बात सारे इलाके में फैल गई। तभी तूफान सा आया। नज़दीकी गांव के एक नामी सेठ ताराचन्द को यह बात पसन्द न आई। वह तथाकथित समाज सेवक था। वह नहीं चाहता था कि उसके इलाके में ऐसी बात हो। इसमें सारे इलाके की बदनामी थी। वह हीमाल की माँ सुखमाल के पास गया। उसे समझाया कि उसे थाने में रपट लिखवानी चाहिए। सुखमाल हिचकिचाई। ताराचन्द ने उसे थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए विवश किया।

बस फिर क्या था। ताराचन्द ने शेष कार्य स्वयं सम्भाला। पुलिस ने नवविवाहित हीमाल और गोपीनाथ को गिरफ्तार किया। गोपीनाथ को थाने में बन्द

किया गया और हीमाल को उसकी मां के हवाले किया। ताराचन्द हीमाल की मां से मिलता रहा और उसे सलाह दी कि बदनामी से बचने के लिए हीमाल की उससे तुरन्त शादी करनी चाहिए। ताराचन्द ने कहा कि समाज सेवक होने के नाते वह स्वयं हीमाल से विवाह करने के लिए तैयार है।

ताराचन्द की पत्नी दो चार वर्ष पहले मर चुकी थी। उसके तीन बड़े-बड़े बच्चे थे। उम्र चालीस-पैंतालीस वर्ष की थी।

सुखमाल कुछ हिचकिचाहट के बाद राज़ी हुई। वह अपनी गरीबी से तंग आ चुकी थी। उसे हीमाल के लिए अच्छे वर-घर की तलाश थी। ताराचंद अमीर था। हाँ, उम्र में कुछ ज़्यादा था। हीमाल की शादी ताराचंद से हो गई।

गोपीनाथ को थाने से कुछ दिनों बाद, ताराचन्द और हीमाल के आपसी विवाह के बाद रिहा किया गया। हीमाल अपने गृहस्थ जीवन के कार्यों में फंस गई। वह गोपीनाथ के साथ अपने विवाह की घटना को एक सपना समझ कर धीरे-धीरे भूल गई। उसने बस इतना सुना था कि गोपीनाथ ने दुबारा विवाह नहीं कराया। वह अपने घर-गॉव से बहुत ही कम बाहर जाता था। वह शायद अपने विवाह की घटना को भूल नहीं पाया था। किसी ने यह भी कहा था कि उसने अपनी ज़मीन जायदाद बेचकर सारी पूंजी किसी मंदिर को दान में दी थी और वह अब साधू बन कर केवल धर्म-कर्म के कार्यों में जुट गया था।

बहुत कोशिश करने के बावजूद हीमाल को सारी रात नींद नहीं आई। वह गोपीनाथ से एक बार मिलना चाहती थी। हीमाल बहुत सवेरे उठकर मंदिर चली गई। मंदिर के पास ही छोटी धर्मशाला थी। उसने देखा धर्मशाला के दरवाज़े पर मंदिर के पुजारी और दो-तीन व्यक्ति खड़े थे। उन्हें देखकर हीमाल का दिल न जाने क्यों ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। वह व्याकुल सी उनकी ओर बढ़ी। उसने पुजारी से पूछा,

"पंडित जी, क्या बात है?"

"महात्मा जी गुज़र गए हैं", पंडित जी ने उत्तर दिया।

"महात्मा जी?" हीमाल के रूंधे गले से चीख सी निकली। वह आगे बढ़ी। उसका दिल बहुत तेज़ी से धड़का। उसे पसीना आ गया। वह हाथ जोड़कर गोपीनाथ की लाश के पास बैठी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह प्रायश्चित कैसे करेगी।

राम कहानी

ट्रेन साढ़े छः बजे सवेरे की थी। ट्रेन इसी स्टेशन से चलनी थी। मैं दस-पंद्रह मिनट पहले ही ट्रेन में बैठा। थोड़ी ही देर में एक कुली काफी सामान लेकर चढ़ा-तीन अटैचियाँ और कुछ थैले। कुली ने सामान ऊपर वाले बर्थ पर रखा। कुली के पीछे-पीछे सवारियाँ चढ़ीं। एक सिख परिवार के लोग थे। लगभग अस्सी साल का एक बूढ़ा लाठी के सहारे, धीरे-धीरे चलकर मेरी दाहिनी ओर की सीट पर बैठा। उसके साथ ही एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति, उसकी पत्नी और बीस बाईस वर्ष का एक लड़का चढ़े। औरत मेरी सीट के सामने की खिड़की के पास बैठी। थोड़ी देर के बाद उसका पति उसके साथ ही सट कर बैठा। उसने तकिया और कम्बल का थैला अपनी पीठ के पीछे रखा। उनका जवान लड़का पहले मेरी सीट पर उस बूढ़े व्यक्ति और मेरे बीच में बैठा। बाद में ट्रेन चलने पर सामने की ही आधी खाली वाली सीट पर लेटा।

बूढ़ा सीट पर सीधा बैठा। उसने अपनी लाठी सीट के पीछे रखी। उसने अधेड़ उम्र के व्यक्ति से (जो उसका बेटा होगा) कोई चीज़ मांगी। बदले में उस अधेड़ उम्र वाले व्यक्ति ने उसे एक काला थैला उसके हाथ में थमाया। बूढ़ा इसमें से कोई चीज़ टटोलता रहा। उसने कोई दवाई निकालकर इस थैले को अपने पास रखा। मैंने ध्यान से बूढ़े की ओर देखा। उसकी दाढ़ी और भौहें घनी और सफेद थीं। उसने सफेद कुर्ता पयजामा पहना हुआ था और एक काली सी वासक्ट पहनी हुई थी। उसके हाथ दवाई का लिफाफा खोलते हुए काँप रहे थे। उसने थैले से एक पानी की एक छोटी बोतल भी निकाली। दवाई की गोली मुंह में डाली और बोतल से ही पानी के दो-एक घूंट पी लिए। दवाई खाकर वह सामने की सीट पर बैठे अधेड़ उम्र के सरदार से कुछ पूछने लगा। वह थोड़ी-थोड़ी देर के बाद 'हूँ' या 'ना' में उसकी बातों का जवाब देता रहा। दर असल वह अपनी बीवी के साथ बातचीत में व्यस्त था। बूढ़ा बार-बार कुछ पूछता रहा पर अधेड़ उम्र वाला सरदार अधिकतर अनसुनी करता रहा । उसकी पत्नी की समझ में जैसे कुछ भी नहीं आ रहा था। वह अपने पति से इशारों में ही जैसे बीच-बीच में पूछती थी, "आखिर यह क्या कह रहा है?" उसका पति बातें हाँक रहा था। इस बीच बूढ़ा धीमी आवाज़ में कुछ न कुछ बोलता रहा ।

इतने में कोई स्टेशन आया। बूढ़े ने मेरी ओर देखकर स्टेशन का न.म पूछा। मैंने बताया। वह अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरकर मुस्करा कर बोला,

"मैंने इस शहर में कई वर्ष नौकरी की है। सामने बैठे सरदार की ओर इशारा करते हुए बोला" "यह मेरा बेटा इसी शहर में पढ़ा है। उसकी माँ पहले ही गुज़र गई थी।" यह कहकर वह फिर अपने बेटे को सम्बोधित करके कुछ कहने लगा। पर उसने ध्यान नहीं दिया।

बूढ़े ने थैले से पानी की बोतल फिर निकाली और कांपते हाथों एक और घूंट पानी पिया। वह फिर कहने लगा "मेरा एक ही बेटा था। इसे कॉनवेंट स्कूल में दाखिल कराया। स्कूल अच्छा था। इसी लिए मैंने अपनी तबदीली नहीं कराई। प्रमोशन मिलने पर भी दूसरे शहर नहीं गया। खैर हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद उसका पढ़ाई में मन नहीं लगा। फिर करोबार करने लगा। शादी की। इनका भी एक ही बेटा है (सामने की सीट पर लड़के की ओर इशारा करते हुए)। यह कालिज में है।"

पता नहीं वह मुझे अपने परिवर की कहानी क्यों बता रहा था। बूढे आदमी के मेरे साथ बातचीत करने पर इनके परिवार के सदस्य पता नहीं क्या सोचते होंगे। उनको शायद बुरा लग रहा था। मैं जानबूझकर दिलचस्पी लेने लगा, और बीच-बीच में शीशे से बाहर देखने लगा।

उसका बेटा भी मेरी ओर देखकर धीरे से बोला, "ये आपको भी बोर करेंगे। इनकी राम कहानी आसानी से खत्म नहीं होगी।"

मैंने बूढ़े की ओर देखा। वह बड़ी कातर नज़रों से मेरी ओर देख रहा था।

खालीपन

बस से उतर कर वह बैग हाथ में लेकर पैदल चल रहा था। वह अपने ही विचारों में निमग्न था कि पीछे से हार्न बजा। पलट कर देखा तो एक सफेद मारुती पास ही रुक गई। कार में शैलजा थी। कार का शीशा नीचे करते हुए शैलजा ने नमस्ते की। कार का दरवाज़ा खोलते हुए भीतर आने के लिए कहा। वह शैलजा की बगल वाली सीट पर बैठा।

"कहाँ जाना है?" शैलजा ने पूछा। यह सवाल अनावश्यक था। वह भली भांति जान गई होगी कि उसे कहां जाना होगा। फिर भी बोला,

"बस, अपने पुराने दफ्तर तक।"

"किसी सरकारी काम से आए होंगे?"

"जी, एक सेमिनार है। खैर आप सुनाइए। कैसी हैं?"

"घर आइए तो बता दूंगी," उसने मुस्कराते हुए कहा।

"आप बहुत खुश नज़र आतीं हैं। डॉ. साहब कैसे हैं?"

"अच्छे हैं। अपने काम में हमेशा की तरह व्यस्त"। इतने में दफ्तर आया। उसने पूछा, किस गेट पर उतारूँ?"

"आप यहीं उतारइए। मैं पैदल जाऊंगा।"

"नहीं ऐसे कभी हो सकता है। मैं आपको गेट तक छोड़ दूंगी।"

"अच्छा, बहुत-बहुत शुक्रिया।"

"किस बात का?" शैलजा ने पूछा।

"मुझे बरसों बाद पहचानने का।"

"अभी तक मेरी यादाश्त बरकरार है। याद है एक बार आपने मुझे तपती दोपहर को विश्वविद्यालय के गेट से मेरे घर तक स्कूटर पर बिठाया था?"

"ओह ! क्या आपको अब तक याद है?"

"क्यों नहीं?"

"फिर वह भी याद होगा कि स्कूटर पर बैठे हुए आपने क्या कहा था?"

"नहीं, क्या कहा था?"

"याद कीजिए?" उसका आग्रहात्मक स्वर था। "आपने मेरी पंजाबी के बारे में कुछ कहा था।" रमेशा ने सकुचाते हुए कहा।

"हाँ, मुझे याद है। मैंने कहा था कि आप बहुत अच्छी पंजाबी बोलते हैं। यही ना? अब तो आप यहां के रहे ही नहीं। खैर, हमारे घर कब आयेंगे?"

"देखूंगा, कब समय मिलता है। परसों वापस जाना है।"

"मैं शाम को पाँच बजे आऊँगी, आपको घर ले जाने के लिए।" शैलजा के आदेशात्मक लहजे के सामने रमेश की कुछ न चली। उसने कहा

"जैसा आपका आदेश।"

शैलजा मुस्कराई और उसने अपनी कार मोड़ी। रमेश ने हाथ हिलाकर उसे विदा किया।

शैलजा कितनी बदली है। रमेश को याद है कि जब डॉ० कुमार के साथ उसकी शादी हुई थी, उन दिनों वह कितनी शर्मीली थी। वह किसी छोटे कस्बे के गरीब परिवार से थी। एम. ए. करने के तुरन्त बाद किसी प्राइवेट कालिज में प्राध्यापिका हुई थी। डॉ० कुमार की पहली पत्नी मर चुकी थी। उसके दो बच्चे थे। शैलजा ने इन बच्चों को अपनाया। वह उनका बहुत ख्याल रखने लगी। उसके ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेदारी आई थी। डॉ० कुमार और शैलजा कैम्पस पर अक्सर सैर करते दिखाई देते थे। शैलजा धीरे-धीरे नए परिचितों से बोलने लगी थी।

इस बीच रमेश का तबादला हुआ। डॉ० कुमार ने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। शैलजा की नियुक्ति पी.एच.डी. करने के बाद इसी शहर के सरकारी कॉलिज में हुई। उनके दोनों बेटों की नौकरी लगी। दोनों की शादी हुई। एक लड़का इसी शहर में ससुराल में रहने लगा है, और दूसरा किसी अन्य शाहर में।

डॉ० कुमार और शैलजा के घर पर रमेश को कई नई बातें पता चली। डॉ० कुमार की पुस्तकें धड़ाधड़ छपी हैं। उन्हें दो एक प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। शैलजा की भी दो पुस्तकें छपी हैं।

खाना खाकर वे बहुत देर तक बातें करते रहे। डॉ० कुमार ने ज़ोर देते हुए कहा,

"हमारे पास सब कुछ है। बच्चे अपने पाँव पर खड़े हैं। स्वतंत्र हैं। मेरे पास कई काम पड़े हैं। मैं इन्हीं में लगा हूँ। शैलजा की सरकारी नौकरी है। उसकी दो पुस्तकें छपी हैं। इसने खूब नाम कमाया है। पिछले दिनों एक पुस्तक पर पुरस्कार भी मिला है।"

रमेश ने शैलजा को मुबारकबाद दी। बदले में वह केवल मुस्कराई। डॉ० कुमार दूसरे कमरे में गए। इस बीच रमेश ने शैलजा से कहा,

"इस बात की मुझे खुशी है कि आप बहुत खुश हैं। आपकी पुस्तकें छप रही हैं, पुरस्कार मिल रहे हैं...."

"हाँ! खालीपन भरने का यह अच्छा साधन है।" कहते हुए शैलजा के हंसमुख चेहरे पर एकदम मायूसी की एक लहर दौड़ी। शैलजा के ये शब्द सुनते ही रमेश के सारे शरीर में एक सरसराहह सी दौड़ गई....।

इतने में डॉ० कुमार एक मेडल और सर्टिफिकेट लेकर आए।

"यह देखिए शैलजा का पुरस्कार।"

मन की बात

कुछ ही दिनों में वे दोनों एक दूसरे के बहुत करीब आ गये थे। पहले पढ़ाई-लिखाई की बातें होती रहीं, फिर इधर-उधर की। और व्यक्तिगत बात ही क्यों वे अब घंटों एक साथ उठते-बठेते थे, साथ-साथ काम करते थे, और सैर-सपाटा करते थे। दोनों के बीच उम्र का काफी अंतर थ। आनंद लगभग पचास वर्ष का था और बेला चौबीस वर्ष की। दिन प्रतिदिन दोनों में सामीप्य बढ़ता रहा। उनकी पारस्परिक निकटता को देखकर दफ्तर में और आस पड़ोस में खुसर फुसर भी होने लगी। दोनों को इस की पर्वाह् न थी। गुरू और शिष्य के सम्बंध की भी एक सीमा है। वाकई ये दोनों इस सम्बंध की सीमा को कुछ हद तक लांघ गए थे।

आनंद बेला से अधिक देर अलग नहीं रह सकता था। बेला को किसी सेमिनार में एक अन्य शोधकर्ता उमेश के साथ बम्बई जाना पड़ा। बेला और उमेश लगभग एक ही उम्र के थे। वे एक दूसरे को वर्षों से जानते थे। वे कालिज और युनिवर्सिटी में एक साथ रहे थे। दोनों में अच्छी मित्रता थी। यह सब जानकर भी आनंद को पता नहीं क्यों यह बात अच्छी न लगी कि ये दोनों एक साथ बम्बई जा रहे हैं किसी सेमिनार में। क्योंकि यह सेमिनार महत्वपूर्ण था और बेला को पेपर प्रस्तुत करना था, इसलिए वह उसे रोक न सके।

बेला और उमेश ने सेमिनार में भाग लिया। अपने-अपने पेपर प्रस्तुत किये। वापसी पर दोनों एक साथ प्रो० आनंद से मिलने गए। दोनों ने सेमिनार के बारे में बातें की। अपने पर्चों पर हुई चर्चा के बारे में प्रो० आनंद को बताया। दोनों बहुत खुश थे।

शाम को जब आनंद और बेला की दुबारा मुलाकात हुई। आनंद बहुत ही उत्सुक लग रहा था। बड़ी उत्सुकता से उसने बेला से कहा,

"उमेश के साथ बम्बई जाने से तुम बहुत खुश हो। तुमने खूब एंजॉय किया होगा?"

बेला बिना सोचे-समझे बोली,

"हाँ, अच्छा लगा। सेमिनार की व्यवस्था ठीक थी। समय अच्छा बीता और हमारे पेपर भी अच्छे रहे।"

"मेरा मतलब पेपर से नहीं है। इस यात्रा में तुम दोनों ने साथ-साथ रहकर खूब आनंद उठाया होगा"

आनंद की अर्थपूर्ण मुस्कराहट अब बेला से छिपी नहीं रही। वह समझ गई कि आनंद के दिल में क्या है। उसको आनंद से यह आशा न थी। वह बहुत ही गम्भीरता से बोली,

"ओह, आपकी बात मैं अब समझी। एक बात मैं कहना चाहती हूँ कि युवा लोगों के मन अन्य लोगों से कई गुना साफ होते हैं। हमारे दिल में ऐसी छिछली बातों का कोई स्थान नहीं।" यह कहते हुए कुछ अनमनी और उदास सी बेला प्रो. आनन्द के कमरे से बाहर निकली।

फायदा

पीटर और मैं रेलवे स्टेशन के बैंच पर बैठे किसी विषय पर बातों में निमग्न थे। एक मध्यम कद वाला लगभग पचास वर्ष की आयु का दुबला पतला आदमी पास आकर बैठा। उसके हाथ में एक थैला था। वह बैठते ही पीटर की ओर सम्बोधित होकर बोला,

"आप कहां के हैं? आप हिंदी जानते हैं।" उसके मुंह से शराब की बू आ रही थी। वह दिन में पिये हुए था।

"मैं अमरीकी हूँ।" पीटर ने कहा।

"ये हिंदी के अलावा मराठी और कश्मीरी भी जानते हैं," मैंने बात आगे बढ़ाते हुए कहा।

"मैं भी हिंदी जानता हूँ। तमिल मेरी मातृभाषा है। कन्नड़ भी बोलता हूँ।"

"आप क्या करते हैं?" पीटर ने पूछा।

"मैं प्रोफेसर हूँ।" वह थैला टटोलते हुए बोला।

"प्रोफेसर ! पर लगता है आपने दिन में ही शराब पी हुई है।" पीटर ने हैरानी से कहा।

"हाँ, मैंने शराब पी है। मेरे इस थैले में भी आधी बोतल है।"

"आप यहां स्टेशन पर क्यों आए शराब पीकर।"

"मैं शराब के बिना नहीं रह सकता। मैं किसी दोस्त को विदा करने आया था। वह थोड़ी देर पहले मद्रास चला गया। हमने लंच होटल में ही किया था।"

"आपको घर जाना चाहिए था।" मैंने कहा।

"घर?" वह हंसते हुए बोला, "मेरे घर में क्या रखा है। मैं अक्सर घर से बाहर ही रहता हूँ।"

"घर पर कौन-कौन हैं आपके?" पीटर ने पूछा।

"कहने को तो मेरी बीवी है और एक बेटा। मगर मेरी बीवी मुझसे हमेशा लड़ती रहती है। मैं तंग आ गया हूँ घर से।" वह बोला।

"आखिर क्यों? इसलिए कि आप शराब पीते हैं?" पीटर ने पूछा।

"मैं घर से तंग आकर ही शराब पीता हूँ। मेरी पत्नी नौकरी करती है। वह गज़ेटिड ऑफिसर है। मेरे से वेतन केवल आधा पाती है पर अपने को पता नहीं क्या समझती है। उसने बेटे को भी अपनी ओर कर लिया है।

"बेटा कितना बड़ा है?" मैंने पूछा।

"वह दसवीं कक्षा में पढ़ता है। पंद्रह वर्ष का हैं।"

"क्या आपका बेटा अपने माँ-बाप की लड़ाई से परेशान नहीं होता?" पीटर ने पूछा।

"वह बहुत परेशान रहता था। हमारे लड़ाई-झगड़े से बहुत नाराज़ होता था। रोता-पीटता था। पर अब वह अपनी माँ का ही साथ देता है। वह भी मेरे साथ बात नहीं करता।" वह बोला।

उसकी यह बात सुनकर पीटर बहुत ही गम्भीर मुद्रा में बोला,

"मुझे लगता है, कसूर आपका है। कोई भी पत्नी अपने शराबी पति के साथ खुश कैसे रह सकती। आखिर आप शराब पीना छोड़ क्यों नहीं देते?"

"कई बार कोशिश की। अब यह मेरी आदत बन गई है। मैं इसके बिना नहीं रह सकता।

"क्या आपने इलाज कराया?" मैंने पूछा।

"कुछ साल पहले इलाज कराया था। शराब कुछ कम हुई। फिर से आदत पड़ गई। दवाइयां सब बेकार है, मन का सकून होना चाहिए।"

"आप ठीक कहते हैं। आप पत्नी के साथ सलाह क्यों नहीं करते?" मैंने पूछा।

"यह सलाह बहुतों ने दी। आप भी दे रहे हैं। मैंने कोशिश भी की, मगर कोई फायदा नहीं।"

“लगता है आपके साथ बात करना बेकार है।” पीटर बोला।

“मैं कौन बात करना चाहता हूँ।” यह कहकर वह झट से थैला उठा कर चल पड़ा। वह कुछ दूर जाकर दूसरे किसी बैंच पर बैठ गया, जहां दो आदमी पहले से ही बैठे हुए थे।

कार्यशाला

मनजीत को किसी कार्यशाला में भाग लेने के लिए निमंत्रण मिला। पत्र पढ़कर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। इसलिए नहीं कि उसे ऐसे अवसर नहीं मिलते हैं। बल्कि इसलिए कि यह निमंत्रण पत्र निर्मला का था जो एक शिक्षा-संस्था की प्राचार्य थी। निर्मला का पत्र पढ़ते ही जैसे उसके शरीर में एक खुशी की सिहरन दौड़ गई। वह गहरी सोच में डूब गया। निर्मला उसकी सहपाठिन थी। वही निर्मला जिसके साथ वह बात करने को तरसता रहता था। जिस पर उसने कविताएं लिखी थीं और बदले में उसे ऐसी बेहूदा हरक्तों के लिए डाँट ही मिलती थी। निर्मला ने एक बार डाँटते हुए कहा था "क्या तुम यह फिजूल कविताए लिखने के अलावा कोई कार्य नहीं कर सकते?"

मनजीत को यह सुनकर धक्का लगा।

एम० ए० की परीक्षा पास करने के बाद उनके रास्ते अलग-अलग हो गये। अलग-अलग शहरों में रहने लगे। दोनों की नौकरियां लग गई, अपने-अपने शहरों में।

मनजीत ने कई बार निर्मला से मिलने की कोशिश की। निर्मला टालती रही। एक बार वह उसके घर भी आया। उसने विवाह करने का प्रस्ताव रखा पर निर्मला ने उसे अस्वीकार कर दिया। मनजीत की शादी हुई। उसने अपने विवाह का निमंत्रण पत्र भी उसे भेजा। बदले में निर्मला ने बधाई का तार भेजा।

निर्मला अपने कार्य में व्यस्त रही। नौकरी करने के साथ-साथ उसने उच्च्व शिक्षा जारी रखी। उसे पी.एच.डी. की डिगरी प्राप्त हुई। जब अखबार में यह सूचना प्रकाशित हुई तो मनजीत ने उसे बधाई का तार भेजा। उसने उसका जवाब नहीं दिया। जब उसकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई इसके बारे में मनजीत ने एक प्रंशासा-पत्र लिखा। निर्मला ने उसे जवाब में पुस्तक की एक प्रति भेजी अपने हस्ताक्षार के साथ।

जब वर्षों बाद निर्मला इस शिक्षा संस्थान की प्राचार्य हुई, तो मनजीत उसे बधाई देने के लिए आया।

वह एक नज़दीकी शहर में एक कालिज में प्राध्यापक था। उसने अपनी कविताओं का संकलन निर्मला को भेंट किया। निर्मला ने जब कविताएं पढ़ीं तो उनमें वे कविताएं भी थीं जो उसने बहुत पहले लिखी थी। उसे ये कविताएं अब अच्छी लगीं।

आज वर्षों के बाद मनजीत को निर्मला द्वारा भेजा सरकारी निमंत्रण पत्र मिला। कार्यशाला में भाग लेने का न्योता था। कार्यशाला में कुछ पाठ्य सामग्री बनानी थी।

मनजीत कार्यशाला में भाग लेने आया। सबसे पहले वह निर्मला से मिलने उसके ऑफिस में गया। निर्मला ने उसका मुस्करा कर स्वागत किया। आज भी उसकी आँखों में वही आकर्षण था। जिसका वर्णन वह अपनी कविताओं में किया करता था।

कार्यशाला में लगभग बीस प्राध्यापक थे। वह वर्कशाप की निदेशक थी। उसने काम समझाया। सभी कार्य में जुट गए। मनजीत बहुत ही गम्भीरता के साथ मन लगाकर कार्य करता रहा। वह सबसे पहले संस्थान में आता और सबके बाद जाता। वह लंच ब्रेक में भी अकेला काम करता रहा। मनजीत की गम्भीरता देखकर वह हैरान थी। उसने मनजीत से औपचारिकता निभाते हुए पूछा,

"कैसा काम चल रहा है?"

"बहुत अच्छा।"

"तुम काफी गम्भीरता से काम कर रहे हो?"

"हाँ, बस तुम्हें यह बताने के लिए कि कविताएं लिखने के अलावा मैं दूसरे गम्भीर कार्य भी कर सकता हूँ।" मनजीत निर्मला की ओर देखते हुए धीमी आवाज़ में बोला।

अनिता

अनिता बचपन से ही अपनी मर्ज़ी की मालिक थी। जो कुछ भी करना चाहती थी, करती थी बिना किसी रोक-टोक के। पिता इंजीनियर थे, और माँ कालिज में पढ़ाती थी। पैसों की कोई तंगी नहीं थी। वह खूब खर्चती थी। जब कालिज में आई तो उसके मित्रों और सहेलियों की गिनती बढ़ गई। वह सुन्दर, हंसमुख, मिलनसार, चुलबुली और हाज़िर जवाब थी। बातचीत करने का लहजा आकर्षक था। वह हर एक का मन आसानी से जीत लेती थी।

बी.एस.सी. पास करने के तुरन्त बाद अनिता ने एक कम्प्यूटर कोर्स में दाखिला लिया। यहां इसकी मुलाक़ात अनिल से हुई। अनिल ने चेन्नई से एम. सी.ए. किया था, और वह यहां कम्प्यूटर कोर्स पढ़ाता था। अनिल लगभग पच्चीस वर्ष का था। वह हंसमुख था। अनिता अनिल के व्यक्तित्व से बहुत जल्द प्रभावित हुई। वे दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे। कुछ ही दिनों में वे दोनों एक दूसरे के बहुत करीब आ गये। वे एक साथ पार्टियों में जाने लगे।

अनिल एक मध्यवर्गीय सिंधी परिवार से था। अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा। वह चेन्नई में रहता था। नौकरी करने बैंगलूर आया था।

जब अनिता ने अपने माँ-बाप से अनिल के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो वे दुविधा में पड़ गए। उन्होंने वर्षों पहले मन ही मन सुनील को दामाद बनाना तय किया था। सुनील अनिता के मामा का लड़का था। वह अनिता से दो वर्ष बड़ा था। वे दोनों एक साथ पले और बड़े हुए थे। वे एक ही स्कूल में पढ़ते थे। बचपन उन्होंने साथ साथ गुज़ारा था। आपस में खूब बनती थी।

दोनों परिवारों में घनिष्ट सम्बंध थे। अभी दोनों के बीच विवाह करने की औपचारिक बात नहीं चली थी। फिर भी दोनों परिवारों की यही इच्छा थी। सुनील ने आई. आई. टी. से कम्प्यूटर के विषय के साथ इंजीनियरिंग की डिगरी हासिल की थी। डिगरी प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात उसे बैंगलोर की एक अमरीकी सोफ्टवेयर कम्पनी में नौकरी मिल गई थी। सुनील बहुत ही शरीफ लड़का था। वह बुद्धिमान और मेहनती था।

अनिता की सुनील से अच्छी मित्रता तो थी पर वह उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। सुनील अनिता को चाहता था। वह अपने माता पिता की इच्छा जानता था। वह अनिता को एक सच्चा मित्र समझता था और उससे सलाह मशविरा भी करता था। अनिता ने सुनील से अनिल के बारे में बात की। अनिल के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। सुनील के मन को धक्का लगा पर उसने अपने मन की स्थिति को ज़ाहिर नहीं होने दिया। उसने अनिता को आश्वासन दिया कि वह उसकी मदद करेगा। अनिता के माता-पिता माने नहीं। अनिल के घरवालों को कोई एतराज नहीं था। अनिता और अनिल ने कोर्ट मैरिज करने का निश्चय किया। अनिल के घरवाले कोर्ट मैरिज के पक्ष में नहीं थे। खैर, कोई चारा न था। अनिता और अनिल की कोर्ट मैरिज हुई। अनिता की तरफ से केवल सुनील था ओर अनिल के माता पिता मौजूद थे।

विवाह के तुरन्त बाद अनिता और अनिल हनीमून के लिए दो दिन के लिए ऊटी गए। वहाँ से फिर चेन्नई। अनिल के परिवार का एक छोटा मकान था। जिसमें अनिता के माता पिता और उसकी एक छोटी बहन रहते थे। अनिल के पिता का छोटा-मोटा कारोबार था। उसने कुल पांच दिन की छुट्टी ली थी। वह चेन्नई में दो दिन रहा और फिर बैंगलूर चला गया। अनिता के सास-ससुर अनिता को कुछ दिन रोकना चाहते थे। उनके कुछ रिश्तेदार बहू देखने के लिए इंदौर से आने वाले थे।

अनिल के बैंगलूर जाने के बाद, अनिता का उसके घर में दम घुटने लगा। वह यहां एक पल भी नहीं रहना चाहती थी। उसने टेलिफोन पर अनिल से कहा कि वह यहाँ नहीं रह सकती। अनिल ने कहा कि वह एक हफ्ते के बाद आएगा और फिर उसे बैंगलूर ले जाएगा। दो दिन बीत गए। अनिल के रिश्तेदार इंदौर से आए। जिनमें अनिल के मामा और मामी शामिल थे। वह रोज़ अनिल से टेलिफोन पर बात करती थी। सुनील को भी टेलिफोन किया। उसे अपने माता-पिता की बहुत याद आने लगी। वे इससे नाराज़ थे। उसको लगा कि उसने अपने माता-पिता की मर्ज़ी के खिलाफ अनिल से विवाह करके बहुत ही बड़ी गल्ती की है। वह दिन-रात अकेले में आंसू बहाने लगी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। वह उदास थी। अनिल उसका दु:ख नहीं समझता था। वंह टेलिफोन

पर बार-बार कहता था कि उसे अपने सास-ससुर के पास हंसी खुशी कुछ दिन गुज़ारने चाहिए।

अनिता को यहाँ एक-एक पल गुज़ारना मुश्किल हो गया। उसकी घुटन इतनी बढ़ गई कि उसने अनिल के लौटने से पहले ही यह घर छोड़ने का फैसला किया। आज वह रात भर सो न पाई थी।

वह सवेरे तैयार हुई। उसने सास-सुसर को कहा कि उसे किसी आवश्यक कार्य से बैंगलूर जाना है। उन्होंने उसे रोकना चाहा। पर उनकी नहीं चली। स्टेशन पहुँचकर उसने अनिल को टेलिफोन करने की कोशिश की, पर वह दफ्तर में मौजूद न था। अनिता अपने माता-पिता के घर चली गई। उसके माता पिता उसे देखकर आश्चर्यचकित हुए। वह रोते हुए उनसे लिपट गई।

शाम को उसने अनिल को टेलिफोन किया। अनिल को घर से सूचना पहले ही मिल चुकी थी। वह बहुत ही गुस्से में था। अनिता रिसीवर रखकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उसे लगा कि सब कुछ समाप्त हो गया है।

वाकई सब कुछ समाप्त हो गया था। अनिता ने अपने माता-पिता से परामर्श कर भारी मन से तलाक लेने के लिए कोर्ट में केस दर्ज किया। अनिल को भी एतराज न था। तलाक हुआ।

इस बीच सुनील अमरीका जाने की तैयारी कर रहा था। उसे न्यूयार्क में नौकरी मिल गई थी। सुनील के मां बाप उसके अमरीका जाने से पहले उसका विवाह कराना चाहते थे। अनिता के माँ बाप की हिम्मत न थी कि वह अनिता की सुनील से रिश्ते की बात करते। सुनील के माँ-बाप ने पहल की। सुनील तैयार हुआ। अनिता को मनाया गया।

अनिता और सुनील का सीधे सादे ढंग से विवाह हुआ। अनिता अभी मानसिक तनाव से मुक्त न थी। सुनील ने उसे आश्वस्त किया ...।

सुनील विवाह के दो हफ्तें के बाद अमरीका चला गया। अनिता का तीन महीने के बाद जाना तय हुआ था। अनिता के मन का बोझ अभी तक हल्का नहीं हुआ था। अनिल को पल भर के लिए भी भुलाना मुश्किल था। इस बीच अनिल

बैंगलूर से चेन्नई चला गया था। उसे वहां ही किसी बड़ी कम्प्यूटर कम्पनी में नौकरी मिल गई थी। अनिता अनिल से मिलना चाहती थी। वह उससे माफी मांगकर अपने मन के बोझ को हल्का करना चहाती थी। इसी आशय से उसने अनिल को टेलिफोन किया। बहुत ही आग्रह करने के बाद अनिल ने उससे मिलने के लिए बैंगलूर आना स्वीकार किया।

अनिता उससे मिलने होटल गई। कमरे में घुसते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। अनिल ने उसे सोफा पर बिठाया और बिना कुछ बोले उसके सिर को अपने सीने से लगाया। अनिता बहुत देर तक फूट-फूट कर रोती रही। अनिल की आँखें भी आँसुओं से भर गईं। रोते-रोते ही अनिता ने भर्राई आवाज़ में अनिल से क्षमा-याचना की। अनिल ने कहा, ''जो होना था, सो हो गया। अब तुम खुश रहो। यही मेरी प्रार्थना है।'' अनिता की आंखों से अश्रु धारा बह निकली सोफे पर बैठे-बैठे ही अनिल ने उसे छाती से लगा लिया। अनिता को लगा जैसे उसके मन का बोझ हल्का हो गया है।

समय कैसे बीत गया, उन्हें इसका एहसास न था। आखिर अनिता घर जाने के लिए तैयार हुई। अनिल ने बड़े ही आग्रहपूर्ण स्वर में पूछा, ''क्या तुम रात भर के लिए रुक नहीं सकती?'' अनिता ने जवाब दिया, ''नहीं, आज नहीं। फिर कभी।''

अनिता जब घर लौटी तो उसके मन से जैसे एक बोझ उतर गया था। उस के भीतर फिर जीने की इच्छा जाग गई थी।

नज़र

उसके पास हर सवाल का जवाब था। किसी ने पूछा ''अगर तुम्हारी पत्नी तुम से लम्बी होगी तो क्या होगा?''

''होगा क्या? वह नज़र झुका कर मेरी ओर देखा करेगी और मैं नज़र उठाकर उसकी ओर।''

''अगर कुछ उल्टा हुआ तो?''

''केवल पात्र बदल जाएंगे, नज़रें नहीं बदलेंगी।''

''अगर दोनों की लम्बाई समान हो?''

''फिर नज़र मिलाना मुश्किल होगा। चश्मा लगाना पड़ेगा।''

''कौन सा?''

''दोनों तरह के। धूप का दिन में। नज़र का सुबह और शाम।''

''और रात को?''

''ज़रूरत नहीं है। नींद का बहाना करना ही काफी होगा।''

सपना घर का

बड़े भाई ने एक महीने के अन्दर-अन्दर घर खाली करने के लिए कहा। अंजू स्तब्ध रह गई। उसे यकीन नहीं हो रहा था, कि बात यहाँ तक पहुँच जाएगी। कानूनी तौर से बात सही है कि मकान प्रसाद के नाम पर ही था। प्रसाद के पिता का उम्र भर का सपना था कि वह इस शहर में एक घर बनाए, जिसमें उसका परिवार रह सके। वह किसी दूर के गाँव से यहाँ आया था। उसकी शिक्षा दसवीं तक की थी। किसी सरकारी दफ्तर में वह क्लर्क था। उसने शादी की। बच्चे हुए। उसने किराए के कई मकान बदले थे। अगर किसी बात से वह दुखी था तो बस इसी बात से कि हर दूसरे-तीसरे वर्ष उसे मकान बदलना पड़ता था। उसका एक सपना था, घर बनाने का। उसकी पदोन्नति हुई। परिवार बड़ा था। तीन बेटे और दो बेटियाँ।

रिटायर होने से पहले उसने अपनी बड़ी बेटी का विवाह किया। प्रसाद को इंजीनियरिंग कालिज में दाखला कराया। प्रसाद की शिक्षा पूरी हुई तो रमाकांत रिटायर हुए। रिटायर होते ही उसने एक प्लाट खरीदा। प्रसाद के नाम पर। वह अब फुर्सत से मकान बनाना चाहता था। वह तैयारी में लगा ही था कि ऊपर से बुलावा आ गया। वह चल बसा। घर पर आसमान टूट पड़ा। प्रसाद की किसी प्राइवेट कम्पनी में नौकरी लग गई। अंजू पी.एच.डी. कर रही थी। उसे फेलोशिप मिल रही थी। अंजू की छोटी बहन कालिज में पढ़ती थी और सब से छोटा भाई स्कूल में पढ़ता था। घर का सारा बोझ प्रसाद और अंजू पर था। उनकी माँ को थोड़ी बहुत पेंशन मिल रही थी। प्रसाद अपने पिता का सपना पूरा करना चाहता था मकान बनाने का। उसने अपने पिता की जमा पूंजी और पेंशन की रकम मकान पर लगा दी, और चार कमरों का एक मकान खड़ा किया।

प्रसाद को अब सरकारी नौकरी मिल गई। उसका वेतन दुगना हुआ। उसकी शादी हुई। उसकी पत्नी भी सरकारी नौकर थी। अंजू को पी.एच.डी. की डिग्री मिल गई। वह एक कालिज में पार्ट टाइम लेक्चरर नियुक्त हुई। अंजू अपना सारा वेतन घर के खर्च पर लगाती रही।

सारा परिवार खुश था। प्रसाद और उसकी पत्नी गीता दोनों अपनी-अपनी नौकरी में व्यस्त थे। अंजू कालिज जाती थी पढ़ाने के लिए। चूंकि नौकरी पार्ट टाइम थी, इसलिए वह घर का सारा काम-काज भी करती रही।

घर परिवार की सारी जिम्मेदारी लगभग अंजू पर थी। प्रसाद हर मास केवल दो हज़ार रुपए घर के खर्चे के लिए देता था। माँ की पेंशन एक हज़ार थी और अंजू को अपना सारा वेतन घर पर ही खर्च करना पड़ता था।

प्रसाद और गीता के दो बच्चे हुए। अंजू पर उनकी भी ज़िम्मेदारी थी। घर का खर्चा बढ गया। अंजू बड़ी मुश्किल से घर का खर्चा चलाती थी। प्रसाद ने अधिक पैसे देने से इनकार किया। अंजू के पास अपने विवाह के बार में सोचने का भी समय न था। दो एक प्रस्ताव आए, पर प्रसाद ने कोई दिलचस्पी न ली। अंजू भी अपने ऊपर सारे परिवार की ज़िम्मेदारियां देखकर इसके लिए तैयार नहीं थी। अंजू अपनी छोटी बहन अनु की शादी कराना चाहती थी।

परन्तु अब वह क्या करे, उसके पास रहने तक की जगह नहीं थी। मार्ग में दूर तक अंधकार ही अंधकार फैला था दूर तक कुछ भी दिखाई नहीं देता था...

उम्र कटी है

उसे इस बात का एहसास नहीं कि उसका बच्चपन जावानी में, जवानी अधेड़पन में और अधेड़पन बुढ़ापे में कैसे बदलता रहा। उम्र तो लगभग सारी कटी है पर उसने ज़िन्दगी नहीं गुज़ारी। उम्र कटने में और जिन्दगी जीने में कितना महत्वपूर्ण अन्तर है। काश, इसका उसे पहले कभी एहसास हुआ होता।

आज उसका जवान बेटा उससे प्रश्न करता है, "आखिर आप ने ज़िन्दगी में हासिल क्या किया है? न सम्पत्ति बनाई है, और न पैसे ही बचाए हैं।" उसके बेटे के लिए सम्पत्ति और नकद पैसे ही ज़िन्दगी जीने का निचोड़ है। ऐसा नहीं कि उसने पैसे नहीं कमाए, उसने खूब कमाए थे। उसकी नौकरी अच्छी थी। नौकरी में पदोन्नत्ति भी हुई थीं। वह एक अच्छी पोस्ट से सेवानिवृत हुआ। उसे अपने सेवाकाल में इज़्ज़त मिली। उसकी ईमानदारी, मेहनत और किसी की भी मदद करने की प्रवृत्ति से सभी प्रसन्न थे। वह इन उसूलों का पक्का था। वह अवसर आने पर परिवार के अन्य सदस्यों, समीपी और यहाँ तक कि दूरवर्ती रिश्तेदारों की भी मदद करता रहा। कुछ को उच्च शिक्षा दिलाई, कुछ को निजी कठिनाइयाँ दूर करने में मदद की। खैर, इन बातों से उसके जवान बेटे को क्या मतलब! वह अपने पिताजी की संचित पूंजी को आंकने में दिलचस्पी रखता है। जब उसने अपने बेटे से कहना चाहा कि उसके कंधों पर काफी ज़िम्मेदारियों का बोझ रहा है, तो वह एक पर एक प्रश्न करता रहा।

"इससे आपको क्या मिला? ये ज़िम्मेदारियाँ क्यों उठाईं? अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोचा क्यों नहीं? वह कहना चाहता था कि उसके मां-बाप गरीब थे। उनके पास सिर्फ दाल रोटी का गुज़ारा था किसी तरह उसने मेहनत करके फिर छात्रवृत्ति के सहारे पढ़ाई पूरी की।

पार्ट टाइम नौकरी करके उसने अपनी शिक्षा पूरी की। इतना ही नहीं अपनी बहन के विवाह में भी उसने अपने माँ-बाप की आर्थिक मदद की। अपने छोटे भाइयों को पढ़ाया। वे सब आत्मनिर्भर हैं।

वह बहुत कुछ कह सकता था। पर सुनेगा कौन। बेटे की एक ही रट बरकरार रही, "इससे आपको क्या मिला।" वह अपने बेटे को सन्तुष्ट न कर

सका। आखिर में हार कर कहा, "तुम शायद सही कहते हो, मैंने ज़िम्मेदारियां उठाते हुए उम्र व्यतीत की, पर अपनी ज़िन्दगी नहीं जी। अब तुम्हारा ज़माना है। तुम पूरी तरह से आज़ाद हो। मैं तुम पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं छोड़ रहा हूँ। तुम अपनी ज़िन्दगी जी लेना।"

उसने अपने बेटे को उच्च शिक्षा दिलाई। उसकी नौकरी लगी। उसकी शादी की। वह आज शादी करने के तुरन्त बाद एक नए शहर में जा रहा है अपनी पत्नी के साथ। पिता अपने किसी मित्र से मिलने दूसरे किसी शहर जा रहा है। उसे अब किसी अपने की तलाश है।

उड़ान में

दिल्ली की उड़ान के लिए चेक इन करने के बाद मैं काउंटर के पास ही एक कुर्सी पर बैठा था। वह एक हैंडबैग लेकर काउंटर पर आई। उसके लिए सबका ध्यान अपनी और आकर्षित करना आसान था। उसकी उम्र तीस वर्ष के आस पास थी। नाक-नक्शा तीखा था, बाल गर्दन तक कटे थे। उसने ब्लयू जीनज़ और एक चैक कोट पहना था। वह सीधे काउंटर पर गई और चेक-इन करके पास के ही एक किताबों की दुकान में घुस गई।

दिल्ली की फ्लाइट के लिए सुरक्षा चेक की घोषणा हुई। मैं सुरक्षा चेक के गेट की ओर बढ़ा। वह भी पहुँची और भीतर दाखिल हुई।

मैं भीतर के लाउंज में एक कुर्सी पर बैठा। वहाँ कई कुर्सियां खाली थीं। वह बैठी नहीं। खड़े-खड़े वह जैसे सभी उपस्थित यात्रियों का जायज़ा ले रही थी। लगता था उसकी नज़रें भीड़ में किसी को ढूँढ़ रही थी। मेरे पीछे की पंक्ति में किसी ब्लयू सूट धारी अधेड़ उम्र के व्यक्ति को देखकर उसने दूर से ही हाथ हिलाया। उसे देखकर उसके चेहरे पर चमक सी आई थी। वह उसकी ओर तेज़ी से बढ़ी। उस आदमी ने खड़े होकर उसके साथ हाथ मिलाया। दोनों बैठे। मैंने उनका वार्तालाप सुनने की कोशिश की। पर साफ-साफ सुन न पाया। वह किसी पार्टी या बिज़िनेस मीटिंग के बारे में बातें कर रहे थे। दिल्ली के लिए जहाज़ की रवानगी की घोषणा हुई। सभी यात्री विमान की ओर बढ़े। मेरी खिड़की वाली सीट थी। मैंने ऊपर लगे लॉकर में अपना ब्रीफकेस रखा और अपनी सीट पर बैठा। कुछ ही देर में वह फिर दिखाई दी। वह अपनी विशेष चाल से आगे बढ़ी। उसने मेरी सीट के पास के खुले लॉकर में अपना हैंडबैग रखा और मेरी सीट की पंक्ति की ऑयल सीट पर बैठी। हमारे बीच वाली सीट खाली थी। मुझमें उत्सुकता बढ़ी। मैंने एक अखबार उठाया और उसकी सुर्खियों को सरसरी तौर से पढ़ने लगा। उसका चेहरा कुछ जाना पहचाना लग रहा था। मुझे याद नहीं आ रहा था कि मैंने कभी इसे पहले देखा हो।

अकस्मात वह अग्रेंजी में बड़बड़ाई "ओह यहाँ मच्छर हैं।" मैंने उसकी ओर

देखा। वह अपना पैर खुजला रही थी। उसने एक ऊँची एड़ी वाली सैंड़ल पहनी थी। मैंने मुस्कराते हुए कहा "जी हाँ, ये हर जगह हैं। ये सारे भारत का भ्रमण करते हैं।" उसने उत्सुकता से पूछा,

"क्या आप कश्मीरी हैं?"

"जी हाँ, पर आको कैसे पता चला?" मैंने जवाब दिया।

"आपके लहजे से।"

"ओह, आज तक कभी किसी ने मुझे लहजे से नहीं पहचाना।"

"मैं भी आधी कश्मीरी हूँ।"

"आधी कश्मीरी? मतलब?"

"मेरा कान देखिए।" उसने अपने दाएं कान की ओर इशारा करते हुए कहा। उसके कान में छेद था और उसने एक सोने की बाली पहनी थी। इसका क्या मतलब? मैंने सोचा। कोई भी औरत अपने कानों को छिदवा सकती है। वह आगे बोली,

"मेरे पिताजी कश्मीरी हैं, और मेरी मां जर्मन है। मेरा जन्म और पालन जर्मनी में हुआ है। मैं जर्मन नागरिक हूँ।"

ज़ाहिर है। उसका नाक-नक्शा कश्मीरी नाक नक्शे से मिलता जुलता था इसीलिए शायद वह जानी पहचानी लग रही थी। मैने पूछा,

"आप भारत कैसे आई?"

"मैं एक जर्मन अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी में नौकरी करती हूँ और आजकल मेरी पोस्टिंग दिल्ली में है।"

मेरी उत्सुकता और बढ़ी' "आपने भारत में आने का फैसला क्यों किया?"

"यह एक चुनौती वाला पोस्ट है। मुझे अधिकतर पुरुषों के साथ काम करना पड़ता है। और मुझे पुरुषों पर अनुशासन करना अच्छा लगता है।" उसने मुस्कराते हुए कहा।

चर्चा का विषय अब पुरुष था। उसने कहा कि वह किसी फ्रांसीसी युवक से

विवाह करना चाहती थी, मगर उसका मंगतेर जर्मन है।

"आखिर फ्रांसीसी ही क्यों?" मैंने पूछा।

"वे बड़े सौम्य होते हैं और आसानी से ही किसी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।"

"जर्मन के बारे में आपकी क्या राय है?"

"जर्मन आसानी से मित्र नहीं बनते। मगर जब वे मित्र बनते हैं तो उनसे छुटकारा पाना आसान नहीं है। इसीलिए मैं एक जर्मन से बंध गई।"

"भारतियों के बारे में कोई अनुभव?"

"भारती! उफ! वे बड़ी उतावली से आपके करीब आते हैं। वे बहुत ही पोज़ेसिव होते हैं। जो सम्बन्ध बड़ी जल्दी में बनाए जाते है वे प्रायः उतनी ही जल्दी से टूट भी जाते हैं।" उसके विचार काफी सटीक थे।

बात भारतियों के काम की चली। पुरुषों के बारे में उसकी राय ठीक न थी। उसका कहना था कि पुरुष अधिकारी स्वकेंद्रित, घमंड़ी और स्टेटस कॉनशेस होते हैं। वे केवल हुक्म चलाना जानते है। और अपनी जिम्मेदारियां दसूरों पर थोंपते हैं। वे अपने पावर के भूखे होते हैं। वह अपने कार्यालय में काम करने वाले पुरुष कर्मचारियों की गहरी आलोचक थी। उसके कहने के मुताबिक वे महिला अधिकारियों को अपने बराबर नहीं सकझते। वे ऐसा आभास देते है कि जैसे उन्होंने अपनी काबलियत के बिना पर ही उच्च्व पदवी प्राप्त की है और महिलाओं को पदोन्नतियां किन्हीं दूसरे कारणों से मिलती, हैं।

वह बहुत ही दृढ़ फेमिनिस्ट लग रही थी। वह अधिकतर बोलती रही और मैं सुनता रहा। अब मैं धैर्य खोने लगा। मैंने पुरुषों से अर्थशास्त्र का विषय बदलना चाहा। उसको एक और बिन्दु मिला, और कहा कि उसका दृढ विश्वास है कि आर्थिक विकास तब सम्भव होगा जब पुरुष और महिलाएं बराबर के हिस्सेदार हों और महिलाओं के साथ भेदभाव नहीं बर्ता जाएगा।

मैंने दुबारा अपनी सहनशीलता खो दी। मैंने कहा, " अच्छा अब दिल्ली की

बात करते हैं। आपको दिल्ली में रहना कैसा लगता है?"

"दिल्ली! तोबा तोबा! मेरा यकीन कीजिए। मैं होश-हवास खो जाती हूँ जब मुझे घर से दफ्तर तक और दफ्तर से घर तक कार में सफर करना पड़ता है। चारों तरफ प्रदूषण और शोर-शराबा है, गन्दगी है। मगर दिल्ली में कुछ अच्छे होटल और रेस्तरॉं भी हैं। इससे मुझे याद आ रहा है, कल रात को मेरा एक फ्रांसीसी सज्जन के साथ होटल ताज में डिनर डेट है। मैं इस फ्रांसीसी सज्जन से कुछ दिन पूर्व कलकत्ता से दिल्ली आते हुए जहाज़ की उड़ान में मिली। वह बहुत अच्छा है। उसने पैरिस लौटने की यात्रा एक दिन के लिए स्थगित की ताकि वह मुझे डिनर पर ले जा सके।

मैंने मुस्कराते हुए कहा "वह बहुत भाग्यशाली है। मुझे यकीन है कि आप खूब आनंद लेंगे।" यह सुनते ही उसने मेरा बायां हाथ अपने हाथ से दबाया और वह चुलबुले अन्दाज़ में मुस्कराई।

ज्योंही हम दिल्ली के एयरपोर्ट से बहार आए, एक वर्दी पहने सिक्ख युवक उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सल्यूट किया और वह कार की पिछली सीट पर बैठी। उसने मेरी और हाथ हिलाया।

किसी ने नहीं सुनी

जमाल की न अच्छी शक्ल-सूरत थी और न पढ़ा-लिखा ही था। नाटा होने की वहज से उसे 'भांड' कहते थे। जमाल भांड। उसका पिता एक सीधा-सादा किसान था। होश सम्भालते ही जमाल भी इसी काम में लगा था।

जमाल पन्द्रह वर्ष का ही था जब उसका विवाह हुआ। ससुराल खुड़वनी में था। खुड़वनी मल्लाहों के लिए मशहूर है- नावों के मल्लाह और मछली बेचने वाले मल्लाह। ज़ेबा उसी की उम्र की थी मगर वह जमाल से थोड़ी लम्बी थी। शक्ल-सूरत से भी अच्छी थी। विवाह करने के बाद जमाल की स्थिति ही बदल गई। वह फूले नहीं समा रहा था।

ससुराल में आते ही ज़ेबा ने घर का रंग ढंग ही बदल दिया। वह सवेरे से शाम तक घर का काम करती रही। उसने खाना पकाने, चौका-बर्तन करने, घर की सफाई, कपड़े धोने आदि की सारी ज़िम्मेवारी सम्भाली। आस पड़ोस में सुबहान मलिक के घर की सुधरती हालत छिपी न रही। ज़ेबा की निपुणता पर कइयों को ईर्ष्या हुई और कुछ उसकी तारीफ करते रहे। जमाल के माता-पिता भी बहुत खुश थे। सुबहान मलिक की उम्र भर की मैल धुल गई। ताजा भी अब साफ-सुथरे कपड़े पहनने लगी। जमाल की तो बात ही मत पूछिए। उसकी टोपी भी अब तिरछी रहती थी।

ज़ेबा अपने घर-परिवार पर जान न्योछावर करती रही। घर के काम के अतिरिक्त वह अपने पति और ससुर के लिए खेतों पर दोपहर का खाना ले जाती थी और शाम की चाय भी। घर के पशुओं का ख्याल रखती थी। उनके लिए चारा लाती थी।

पहले पहले ज़ेबा अपने घर परिवार के काम में इतनी निमग्न रही कि उसे अपने आस पड़ोस वालों के साथ बात करने तक को समय नहीं मिलता। धीरे धीरे मुहल्ले की बहुओं और बेटियों ने उसके पास आना जाना शुरु किया। ज़ेबा सबकी मदद करती रही। वह खुले दिल सबसे बोलती चालती थी। ज़ेबा के घर की देखा देखी में आस-पड़ोस के लोगों के घरों की हालत भी सुधरने लगी। सभी पड़ोसी ज़ेबा की तारीफ करते थे।

समय बीतता गया। ज़ेबा के बच्चे हुए। उसकी ज़िम्मेदारियां अधिक बढ़ गई। उसने बच्चों को स्कूल भेजा। वह बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहती थी। स्वयं पढ़ी लिखी नहीं थी। इसलिए घर पर अपने बच्चों को पढ़ा नहीं सकती थी। ज़ेबा ने इसी गांव के मास्टर मोहन लाल से विनती की कि वह रशीद को स्कूल के बाद घर पर पढ़ाए। मोहन लाल ट्यूशन नहीं लेता था, पर ज़ेबा को वह इनकार न कर सका। रशीद शाम को मोहन लाल के घर पढ़ने के लिए जाने लगा। मोहन लाल ने ज़ेबा से पैसे नहीं लिए। ज़ैाबा कहाँ मानती। वह मोहन लाल के घर किसी न किसी बहाने छोटी-मोटी वस्तुएं भेजती रही मसलन दालें, राजमा, अण्डे, सब्जियां इत्यादि।

रशीद पढ़ने में अच्छा था। मोहन लाल ने उसका मार्ग दर्शन किया। वह दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था था कि कश्मीर के हालात बदल गए। आतंकवादियों के खौफ से गाँवों में से हिंदू भागने लगे। इस गाँव में हिंदुओं के कुल दस बारह घर ही थे। मोहनलाल भी एक रात को ट्रक में घर का सामान लाद कर भागा। जब इस गाँव में से हिन्दुओं ने जाना शुरू किया, ज़ेबा के दिल को बहुत ही धक्का लगा। वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। वह एक एक करके सबसे विनती करती, 'अपना घर-गाँव छोड़कर मत जाइए। हम आपके लिए अपनी जान तक देंगे। पहले वे हमं मार डालेंगे बाद में आपको।" अफसोस, किसी ने उसका कहना न माना। चारों ओर हालात बिगड़ गए थे।

इस गाँव में से सभी हिन्दुओं के घर खाली हुए, पन्द्रह दिनों के भीतर हिन्दुओं के घरों को जला भी दिया। सामान सारा लूट लिया। कहते हैं कि आग लगाने वाले और सामान लूटने वाले दूसरे गाँवो से आए थें। सच्च कया और झूठ क्या? कहते हैं कि उस समय भी ज़ेबा को जैसे जनून आया। वह पगला गई। वह सामान लूटने वालों और आग लगाने वालों को ज़ोर - ज़ोर से गालियां देने लगी। उसकी बात किसी ने न सुनी।

इसके तुरन्त बाद उस पर एक पहाड़ टूट गया। ज़ेबा का बेटा रशीद किसी रिश्तेदार के यहां गया था एक नज़दीक के गाँव में। उसको आतंकवादियों ने मार डाला। उसके शरीर को गोलियों से भून डाला। ज़ेबा की हालत एक जखमी शेरनी की तरह हुई। वह पागल सी हुई। आस पड़ोस के लोग चोरी छिपे इससे हमदर्दी

दिखाने लगे। सारे गाँव में दहशत फैल गई। ज़ेबा का दिल पूरी तरह टूट गया। कहते हैं कि वह सारा दिन नदी के किनारे बैठकर हिन्दुओं के जले हुए घरों को एक टक देखती रहती है। उसको अपने बेटे की गोलियों से छलनी हुई लाश इसी जले हुए राख के ढ़ेर में लटकती नज़र आती है।

खिलौना

वह जल्दी में कोई चीज़ ढूंढ रहा था। उसने कमरे की तमाम चीज़ें उल्ट-पलट कर दी। माँ को आवाज़ दी।

"माँ, मैनें मेज़ पर कोई चीज़ रखी थी। कहाँ है?"

"मिटटी का खिलौना?" माँ ने पूछा।

"माँ वह मिट्टी का खिलौना नहीं है। कहाँ है?"

"बेटा, मैं सफाई कर रही थी। वह टूट गया। मैंने फैंक दिया।"

माँ के शब्द सुनते ही रमेश आग बबूला हो गया। वह चिल्लाया।

"माँ तुम गंवार हो। तुम्हें चीज़ों के मूल्य का कोई अन्दाज़ा नहीं। वह अनमोल गिफ्ट था। सवितां ने खुद बनाया था मेरे लिए। सविता रमेश के साथ कालिज में पढ़ती थी। दोनों में मित्रता थी। कॉलिज में दिन में साथ साथ तो रहते ही थे, शाम को वे दोनों अक्सर बड़ी देर तक टेलिफोन पर बातें करते थे।

माँ ने देखा रमेश गुस्से में था। उसे पता था कि उसका गुस्सा आसानी से उतरता नहीं। वह मन ही मन सोचती रही। रमेश चौबीस साल का है। अभी तक उसमें बचकाना बाकी है। एक मिट्टी के खिलौने के टूटने पर इतना गुस्सा! वह अपने ही विचारों में खोई थी कि रमेश बड़बडाते हुए बिना कुछ खाए-फिर घर से बाहर निकला। माँ ने रोकना चाहा, पर रोक न सकी।

माँ ने कूड़ेदान से उस मिट्टी के खिलौने को ढूँढ निकाला। यह किसी जंगली जानवर की आकृति थी। दो टांगें टूट गई थी। उसने टांगों को जोड़ने की कोशिश की, पर सफलता न मिली।

रमेश देर रात को घर लौटा। माँ के बार बार ज़िद करने पर भी उसने खाना नहीं खाया। माँ भी बिना कुछ खाए पिए सो गई। सुबह भी यही हाल रहा। रमेश नहा-धोकर बिना कुछ खाए-पिए घर से चल पड़ा।

माँ से अब बर्दाश्त न हुआ। वह अपने को कोसने लगी कि उससे वह मिट्टी का खिलौना टूटा कैसे। उसने सविता को टेलिफोन किया और उससे सारी

बात बताई। सविता ने उसे बताया कि उसने वह मिट्टी का खिलौना स्वयं नहीं बनाया था बल्कि एक नज़दीकी गाँव की दुकान से खरीदा था।

माँ बिना खाए-पिए घर से चल दी। स्कूटर लेकर उसी गांव में गई। वहां हूबहू उसी रंग का खिलौना खरीद कर लाई। कुल पाँच रुपए में। घर आकर उसने खिलौने को रमेश की मेज़ पर रखा और रमेश के घर आने का बेसब्री से इंतिज़ार करने लगी।

शाम को देर से रमेश थका हारा घर लौटा। उसके चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। लगता था कि उसने बाहर भी कुछ नहीं खाया था। वह चुपचाप अपने कमरे में गया। माँ भी पीछे-पीछे गई। रमेश ने मेज़ पर खिलौना देखा, उसे उठाकर फर्श पर ज़ोर से पटक कर तोड़ा। खिलौना तोड़कर वह अपनी माँ के गले लगकर फूट फूटकर रोने लगा।

स्कूल

नव निर्वाचित मुखिया ने गाँव वालों को सम्बोधित किया। उसने कहा 'सबसे पहले गाँव में स्कूल खुलवाना अनिवार्य है। स्कूल की बिल्डिंग होगी तो अपने गाँव में ही वोट डालने के लिए पोलिंग बूथ खुल सकता है गाँव वालों को दूसरे किसी गाँव जाने की आवश्यकता नहीं होगी। इसी तरह समय समय पर पोलियों और चेचक की रोकथाम के लिए इंजेक्शन भी गाँव के बच्चों को यहां ही लग सकते हैं। स्कूल का ग्राउंड़ होगा तो गाँव के लड़के यहीं क्रिकेट खेल सकते हैं, कबड़ी खेल सकते हैं और अन्य खेल भी। उन्हें दूसरे गाँव में जाने की आवश्यकता नहीं होगी। गाँव के उत्सव यहां पर ही मनाए जाएंगे।

एक बात और। दूसरे बड़े गाँवों में कम से कम एक शिक्षक रहता है। इससे उस गाँव की प्रतिष्ठा बढती है। गाँव में शिक्षक का होना बहुत लाभदायक है। शिक्षक गाँव वालों की चिट्ठियां लिख पढ़ सकता है। गांव के छोटे-मोटे झगड़ों का फैसला कर सकता है।

आखिर में स्कूल होगा तो बच्चे भी इसमें दाखला ले सकते हैं। कोई न कोई तो पढ़ेगा ही।

इसलिए हम स्कूल खुलवाने के लिए कल एम.एल.ए. के पास जाएंगे। गाँव वाले स्कूल खुलवाने के लिए तैयार हुए।

कीमत

काठमंडू हम किसी अन्तर्देशीय कॉंफ्रंस के सिलसिले में आये थे। कॉंफ्रंस तीन दिन की थी। कॉफ्रंस में विभिन्न देशों से लगभग १०० प्रतिभागी थे। एक ही होटल में ठहरने की व्यवस्था थी। होटल शहर के बीच में था।

पहले दिन होटल से शम को हम घूमने निकले। बाज़ार विदेशी सैलानियों से भरा था। चारों और खूब रौनक थी। दुकानों की साज-सजावट देखकर रवि का दिल उत्सुकतां से मचल उठा। उसे दुकानों में रखी तमाम चीजें अपनी ओर आकर्षित करने लगीं। वह बिना किसी हिचकिचाहट के दुकानों में घुसकर कई चीजों के दाम पूछता रहा। कौतूहल से कई वस्तुओं को छूता, चीजें उलट-पलट कर देखता रहा। इस तरह वे कई दुकानों में घुसकर केवल कीमतें मालूम करता रहा। जेब में रखी नोटबुक में कुछ वस्तुओं की कीमत दर्ज करता रहा। अधिकतर दुकानें रेडीमेड़ गारमेन्टस, सोविनियर्स, बर्तनों, क्राक्री और एलेक्ट्रानिक चीज़ों की थी।

हम कुछ दूर आगे बढ़े। बाज़ार में सब्ज़ियों और फलों की दुकाने आईं। रवि बिना किसी हिचकिचाहट के उनकी ओर भी लपका। आलू, प्याज़, गोभी, सेब, केले, अंगूर आदि की कीमतें पूछता रहा। मैंने उसे रोकना चाहा, पर वह माना नहीं।

बात यहां तक ही नहीं रही। वह टैक्सी वालों, रिक्शावालों और होटलवालों से किराये की दरें पता करता रहा। रेस्तरावालों और खोमचे वालों से कीमतें पूछता रहा, पता नहीं किस किस चीज़ की। उसने थोड़े ही समय में तमाम कीमतें मालूम की थी।

उसके साथ घूमते हुए मैं काफी तंग आया। आखिर वह यह सब क्यों कर रहा है? न उसे चीज़ें खरीदनी थीं न सब्ज़ियां और न फल। मैंने थोड़े से गुस्से में पूछा, "आखिर यह क्यों कर रहे हो?" उसका जबाब था, "बस यूँ ही। भारत की कीमतों से तुलना कर रहा हूँ।" इसका फायदा?" उसका सीधा उत्तर था, यहां के रहन-सहन का स्तर जानने के लिए।"

कॉफ्रंस के दौरान भी जब भी उसे मौका मिला तो यहां वे शिक्षकों और शोधकर्ताओं के वेतन और अन्य आमदनी के बारे में भी जानकारी प्राप्त करता रहा।

कॉफ्रंस में उसने अपना पेपर पढ़ा। प्रश्नों के उत्तर देने में उसकी कोई दिलचस्पी न थी और न उसने ही किसी से कोई प्रश्न पूछा।

तीन दिन की कॉँफ्रंस के बाद उसके पास काठमंडू के बारे में तमाम जानकारी थी। वह अपने को माहिर समझने लगा। उसे कीमतों के बारे में जानकारी प्राप्त करने और जानकारी देने में विशेष दिलचस्पी थी। वह भारत लौटने पर अपने संस्थान में काठमंडू की कीमतों पर भाषण देने की तैयारी कर रहा था।

जिस दिन हम लौट रहे थे, मेरी फ्लाईट तीन बजे की थी, और उसकी पांच बजे। वह उस दिन सवेरे बाज़ार गया कुछ खरीदने के लिए। मुझे अधिक कुछ खरीदना न था। मैं एयरपोर्ट जाने से पहले नज़दीकी बाज़ार में गया। दो चार छोटी मोटी चीज़ें खरीदीं दो तीन सोविनयर्स और एक चीनी छाता। मेरी फ्लाईट थोड़ी लेट हुई।· मैं एयरपोर्ट के में प्रतीक्षा कर रहा था कि रवि दिखाई दिया। उसके हाथ में एक नया छाता था। उसने कहा कि उसने काठमंडू में एक ऐसी जगह ढूंढ निकाली है जहां चीज़ें सस्ती मिलती है। इसीलिए वह सवेरे ही वहां शापिंग करने गया था। उसने कहा कि मिसाल के लिए उसने यह छाता केवल दो सौ रुपये में खरीदा। ‘‘दो सौ रुपया?’’ मैंने अपने हैंडबैग से अपना छाता निकाला जो हूबहू उसके छाते से मिलता था और कहा,

‘‘मैंने केवल डेढ़ सौ रूपये में खरीदा।’’

‘‘सच्च? यह कैसे हो सकता है? मैंने दस दुकानों में कीमत पूछी, फिर खरीदा।’’

मैंने मुस्कराते हुए कहा, ‘‘हो सकता है कि मरो छाता नकली हो।’’ उसके चेहरे पर मायूसी सी नज़र आ रही थी।

मित्र

वह उन नायाब और विशेष व्यक्तियों में से है जो निकट होने भी पर निकट नहीं होते। उन्हें अपने अधिकार में लाकर भी संभाला नहीं जाता। मुट्ठी में आकर भी वे खिसक जाते हैं।

यह कहानी कई वर्ष पूर्व आरम्भ हुई और कहानी में कोई बदलाव नहीं आया। बात लड़कपन से शुरू हुई। भारत के एक धूल धूसरित ऐतिहासिक शहर में वह अजनबी बनकर आया। अपनी भाषा-संस्कृति को कोसों पीछे छोड़कर एक उपाधि की तलाश में पता नहीं इस ऐतिहासिक शहर में क्यों लोग चलते-फिरते खंडहर और निर्जीव स्तूपों की तरह उसे दिखाई देते थे। लोगों का दैनिक व्यवहार और बातचीत करने का लहजा खंडहरों की भांति ऊबड़-खाबड़ लगता था।

इतने बड़े शहर में वह अकेलेपन का शिकार हुआ। दुआ-सलाम करने के लिए परिचितों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही। पर वह फिर भी अकेला-सा महसूस करने लगा।

इसी दौरान समीर से परिचय हुआ। पहली ही मुलाकात में उसे लगा कि उसे एक मनचाहा मित्र मिला। इस परिचय ने उसके मन में एक नई लालसा को जन्म दिया। जैसे सब कुछ बदलने वाला हो। पर कुछ ही दिनों के बाद उसे लगा कि ऐसा कुछ भी होने वाला नहीं है। वह जितना समीर के करीब आना चाहता था, दूरी और बढ़ती जाती। बातें केवल औपचारिक होती रहीं। समीर हमेशा कई लोगों से घिरा रहता था। उनमें कई हम उम्र लड़कियां और लड़के शामिल थे जो एक दूसरे की होड़ में कभी कुछ कदम आगे हो जाते थे और कभी पीछे। अफवाहों का बोलबाला था। हां, इन हम उम्र व्यक्तियों से अधिक खतरा उनसे था जो उम्र में बड़े थे और इस संस्था के अधिकारी कहलाते थे। जवाहर को लगता था कि समीर के कंधों पर जिम्मेदारियों का बोझ कभी कम होने वाला नहीं था। वह जब भी समीर से मिलने जाता तो देखता कि अधिकतर वह अपने कमरे में डेस्क पर फाइलों के काम में व्यस्त रहता। उसके डेस्क पर बढ़ते कार्य के अतिरिक्त परिचितों या मित्रों के आने-जाने का तांता बंधा रहता था। यह सब

देखकर जवहार के मन में समीर के प्रति सहानुभूति जागती। वह एक सच्चे दोस्त के नाते उसके कंधों के बोझ को हल्का करना चाहता थ। पर करता क्या? उसे समीर का काम करने का अधिकार प्राप्त न था और न वह यह सब कर ही सकता था। जवहार को लगता था कि समीर का कार्य में व्यस्तता और उसके अन्य परिचित दोस्त उनके बीच में एक मज़बूत दीवार बने हैं।

एक छोटे पद पर आसीन होने पर भी समीर पूरे संस्थान का केन्द्र बिन्दु बना था। वह सबके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करता था। खैर, जवाहर ने हिम्मत नहीं हारी। समीर के करीब आने की भरसक कोशिश करता रहा। संस्थान में मित्रता के प्रतियोगियों की भीड़ को जीतने का एक उपाय सूझा। वह छुट्टियों में समीर के घर आने-जाने लगा। घर पर भी वह समीर को हमेशा खाली नहीं पाता था। समीर घर में भी परिवार में सबसे अलग दिखता था।

समीर का व्यक्तित्व-दुबला पतला शरीर, गोरा रंग और तीखा नाक-नक्शा किसी को भी अपनी ओर खींचता था। उसका पहनावा भी बिलकुल भिन्न होता। रंगरूप और पहनावे के अतिरिक्त उसका आकर्षण था- उसके चलने का अन्दाज़, बातचीत करने का ढंग और हाव-भावों की नज़ाकत और कोमलता। उस ऐतिहासिक शहर में फूहड़ ठूठ जैसे युवकों को तो ये सब बातें अपनी ओर आकर्षित करती रही थीं, उससे भी अधिक लड़कियों को। शायद वे उसमें अपनी-अपनी आदर्श प्रतिमाओं का सजीव रूप देखती थीं।

परन्तु भरसक कोशिश करने पर भी जवाहर समीर के करीब न आ सका। इसके लिए मूलतः दो व्यक्ति ज़िम्मेवार थे -सुरेश और प्रीति। सुरेश और ज्योति समीर को हमेशा घेरे रहती थे। वे दोनों अक्सर उसके घर भी आया जाया करते थे। जवाहर और सुरेश की कभी न बनी। जवाहर हैरान था कि समीर सुरेश के चक्कर में क्यों आ गया। सुरेश की चालाकी के सामने जवाहर को हार माननी पड़ी। एक अन्य कारण था प्रीति।

जवाहर यदि किसी अन्य व्यक्ति से थोड़ा-सा भी करीब हुआ था वह थी प्रीति। प्रीति और ज्योति सुदूर पूर्वी प्रांतों से शिक्षा ग्रहण करने आई थीं। दोनों सहेलियां थीं। ज्योति सुरेश के चंगुल में फंस गई। सुरेश ने कोशिश की कि समीर प्रीति के करीब आए। जवाहर को प्रीति अच्छी लगती थी बस एक मित्र के नाते।

कभी कभी दोनों में इधर-उधर विषयों पर बातचीत भी होती थी। एक दिन जवाहर ने प्रीति और समीर को एक साइकिल रिक्शे पर बैठकर बाज़ार जाते हुए देखा था। दूसरे रिक्शे पर सुरेश और ज्योति थे। जवाहर को बहुत ही बुरा लगा। सुरेश उसे पहले ही अच्छा नहीं लगता था आज समीर और प्रीति के बारे में भी उसका मन बदल गया।

जवाहर को फिर चारों ओर खंडहर ही खंडहर नज़र आने लगे। उसका शोधकार्य समाप्त हुआ। उपाधि मिलने की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने वह शहर छोड़ा।

समय बीतता गया। वर्षों बाद समीर और जवाहर एक ही संस्थान के विभिन्न केन्द्रों में काम करने लगे। मिलने पर पुरानी यादें ताज़ा होने लगीं। समीर बहुत कम बदला था। अब उसका अपना परिवार था। इरा और दो बच्चे। इरा ने कैसे उसे जीता, इससे हमारा मतलब नहीं। हां, लगता है समीर नहीं बदला। वह इरा और बच्चों के करीब रहकर भी पता नहीं क्यों अपने को अलग रखने में सफल हुआ है। उसकी आदतों में कम परिवर्तन आया है। जवाहर और समीर लम्बे लम्बे अन्तराल के बाद जब कभी मिलते तो पुरानी बातों की यादें ताज़ी हो जाती थीं।

जवाहर मन ही मन में अब भी समीर को अपना मित्र समझता था। उसके साथ बातचीत करना उसे अच्छा लगता था। जवाहर का तबादलता किसी और मंत्रालय के प्रशिक्षण संस्थान में हुआ। उसके यहां एक स्थान रिक्त था। उसने समीर की नियुक्ति कराई।

जवाहर प्रसन्न था। उसे लगता था कि वे दोनो फिर गहरे मित्र बन जायेंगे। दोनों का सामीप्य बढ़ा। यह सामीप्य बाहरी था। इस बिल्कुल नई जगह में भी समीर आकर्षण का बिन्दु रहा। उनके कई नए दोस्त बने। यहाँ का वातावरण उसे और भी भाया। बाहरी सामीप्य भी धीरे-धीरे कम होने लगा। जवाहर फिर लाचार-सा होने लगा। उसने मन के एकाकीपन को भरना चाहा। इसके लिए भरसक प्रयत्न किया। पर ऐसा न हुआ।

आज समीर विदा होकर जा रहा है। वह अपने पुराने शहर लौट रहा है। शायद वहां भी कई एकाकी मनों को रिझाने के लिए या उनकी रिक्तता भरने के लिए।

डॉ० ओमकार कौल भारतीय भाषा संस्थान मैसूर के निदेशक हैं। इससे पूर्व ये इसी संस्थान में प्रोफेसर एवं उपनिदेशक (१९९४-१९९९), लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मैसूरी में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भाषा संकाय (१९८७-१९९४) और उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र पटियाला के प्राचार्य (१९७१-१९८७) रहे हैं। डॉ० कौल ने भाषा विज्ञान, भाषा शिक्षण, भाषा संचार और साहित्य से सम्बंधित लगभग चालीस पुस्तकें और डेढ सौ शोध-पत्र देश और विदेश से प्रकाशित किए हैं।

वे कश्मीरी और हिन्दी में कहानियां लिखते हैं इन्होंने कश्मीरी कहानियों का हिंदी में भी अनुवाद किया है। कुछ ऐसी कहानियां इनकी पुस्तक कश्मीरी कहानियां (१९९२) में सम्मिलित हैं।

मूल्य रू. 100 सन् 2001